The Food and Land Use Coalition
India Country Platform

CRRI
केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान
Estd. 1946

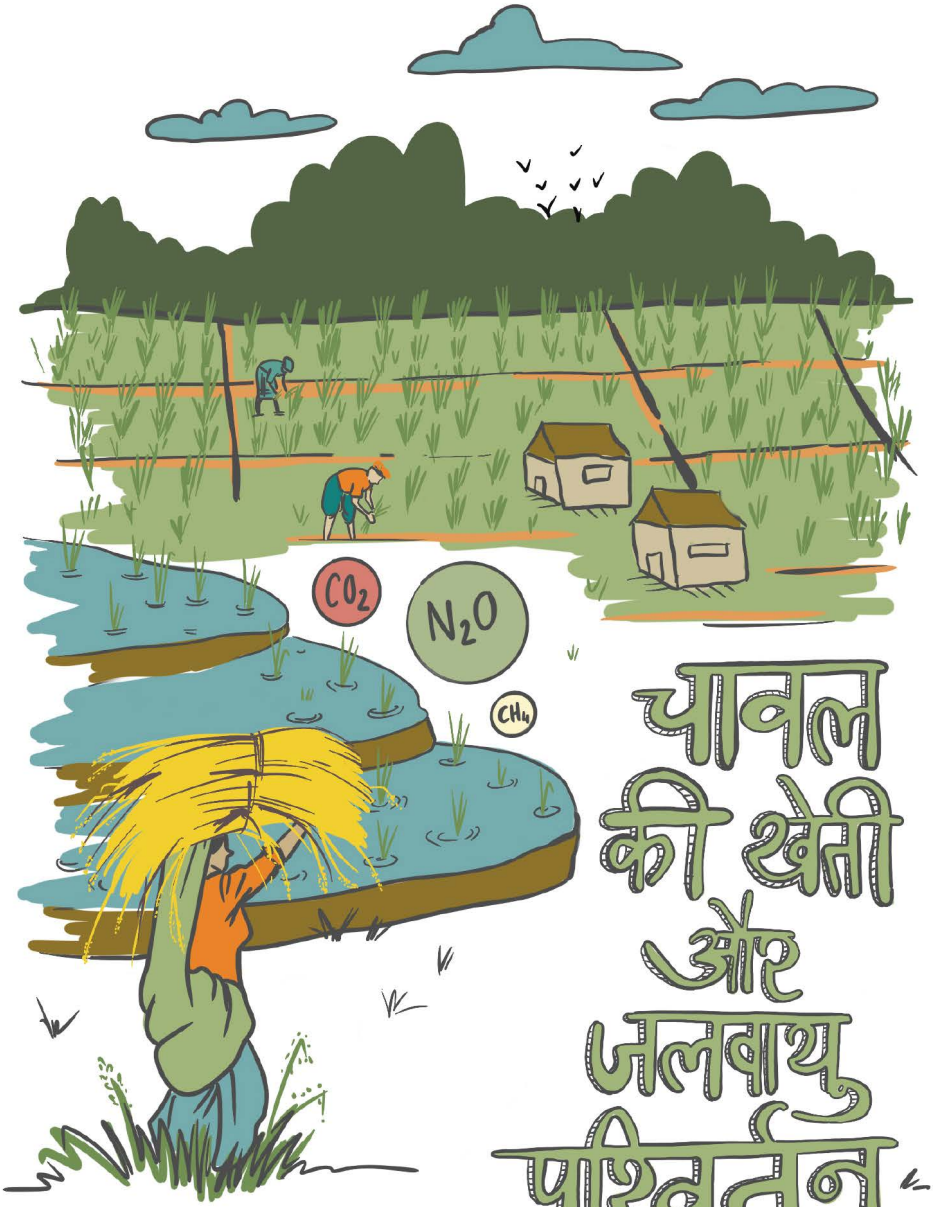

चावल की खेती और जलवायु परिवर्तन

चावल की खेती और जलवायु परिवर्तन

भारत में चावल की खेती को सतत बनाना
चावल की खेती से जुड़े लोगों के लिये मार्गदर्शिका

The Food and Land Use Coalition
India Country Platform

केन्द्रीय चावल अनुसंधान संस्थान
CRRI
Estd. 1946

लेखक

अंजनी कुमार, वैज्ञानिक, कृषि उत्पादन प्रभाग, ICAR-CRRI

संगीता मोहंती, वरिष्ठ वैज्ञानिक- कृषि उत्पादन प्रभाग, ICAR-CRRI

दिब्येंदु चैटर्जी, वरिष्ठ वैज्ञानिक- कृषि उत्पादन प्रभाग, ICAR-CRRI

राहुल त्रिपाठी, वरिष्ठ वैज्ञानिक- कृषि उत्पादन प्रभाग, ICAR-CRRI

ए.के. नायक*, निदेशक, ICAR-CRRI, कटक

जयहरि के.एम., इंडिया कंट्री कोऑर्डिनेटर, फूड एंड लैंड यूज़ कॉलीशन (FOLU)

*वर्तमान पता: DDG, NRM, ICAR, नयी दिल्ली

सम्पादक

नर्मदा खरे, बाह्य सलाहकार, इंडियन इंस्टीट्यूट फॉर ह्यूमन सेटलमेंट्स

चित्रकार

निताशा नाम्बियार

अनुशंसित संदर्भ

Kumar, A., S. Mohanty, D. Chatterjee, R. Tripathi, AK. Nayak, and KM. Jayahari. 2025. “Rice Farming and Climate Change: Making Rice Agriculture Sustainable in India.” Food and Land Use Coalition India (FOLU India), Delhi.

© फूड एंड लैंड यूज़ कॉलीशन (FOLU), 2025

पुस्तक के बारे मे

भारत में चावल की खेती लम्बे समय से ग्रीनहाउस गैसों का स्रोत होने के साथ-साथ उनके अवशोषण का माध्यम भी रही है। देश में चार करोड़ 40 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि पर चावल की खेती की जाती है और इस पर करोड़ों परिवार अपनी रोजीरोटी के लिये निर्भर करते हैं। इस समय हम दोहरी चुनौती से जूझ रहे हैं : पहली, खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करना और दूसरी, कृषि पर पड़ने वाले जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों में कमी लाना। इसके अलावा इस बात को भी अभी पूरी तरह समझा नहीं जा सका है कि चावल के खेतों से होने वाले प्रदूषणकारी तत्वों के उत्सर्जन को प्रभावित करने के लिए पानी, मिट्टी, सूक्ष्मजीव और फसल प्रबंधन किस प्रकार परस्पर क्रिया करते हैं। यह पुस्तक किसानों, सिविल सोसाइटी संगठनों (CSO) और नीति निर्धारकों के लिये लिखी गयी है ताकि वे यह समझ सकें कि चावल की खेती किस तरह से जलवायु परिवर्तन में योगदान करती है और उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह समझाना है कि यह कृषि किस तरह से जलवायु परिवर्तन के समाधान का हिस्सा बन सकती है। इस किताब की परिकल्पना विज्ञान, नीति और उसके क्रियान्वयन के बीच की दूरी को खत्म करने और केन्द्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (CRRI) के दशकों के शोध एवं अनुसंधान और नयी वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि को इस क्षेत्र से जुड़े लोगों, CSO और नीति निर्धारकों के लिए सुलभ ज्ञान के तौर पर प्रस्तुत करने के लिये की गयी है। इस किताब में जटिल जैवभौतिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया गया है और यह चावल की खेती में सतत वृद्धि के लिए क्रियान्वयन योग्य ऐसी रणनीतियां प्रस्तुत करती है जो भारत के जलवायु लक्ष्यों के अनुरूप हैं।

इस पुस्तक में क्या है

- सरल वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि : इसमें स्पष्ट किया गया है कि किस तरह से चावल (धान) के खेतों से मीथेन (CH_4) और नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) जैसी ग्रीनहाउस गैसें उत्पन्न होती हैं, और मिट्टी, पानी तथा उर्वरकों के बेहतर प्रबंधन के माध्यम से इस उत्सर्जन को किस तरह कम किया जा सकता है।

- संदर्भ-विशिष्ट समाधान : यह ऊंचाई वाली जमीन से निचले क्षेत्रों तक वर्षा आधारित और सिंचित खेती प्रणालियों के लिए मार्गदर्शन देती है। साथ ही विस्तार से बताती है कि किस तरह हर भू-दृश्य का जलवायु और आजीविका के सबसे अच्छे परिणामों के लिए उपयोग किया जा सकता है।

- किसान केन्द्रित चर्चा : इस पुस्तक में परियोजना की व्यवहार्यता, लागत, उपज और जोखिम के बारे में किसानों की व्यावहारिक चिंताओं की चर्चा की गई है। साथ ही यह सतत विकल्पों को व्यवहार्य बनाने के लिए कार्बन फंड और जलवायु वित्तपोषण जैसे नीतिगत प्रोत्साहनों के लिए मार्ग सुझाती है।

- भविष्य की परिकल्पना : यह पुस्तक एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण की पैरवी करती है जिसमें मिट्टी का वैज्ञानिक परीक्षण, क्षेत्र-आधारित परामर्श और प्रोत्साहन प्रणालियों को साथ लाया जाये, ताकि भारत को जलवायु परिवर्तन से तालमेल बिठाने और कम उत्सर्जन वाली चावल उत्पादन प्रणालियों की तरफ रुख करने में मदद मिल सके।

संक्षेप में कहें तो यह पुस्तक चावल की खेती से जुड़े लोगों को जलवायु परिवर्तन और इसके दुष्प्रभावों से निपटने में एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में इस अन्न की खेती की पुन: परिकल्पना करने में सक्षम बनाती है। यह पुस्तक किसानों, वैज्ञानिकों और नीति निर्धारकों के बीच सहयोग बढ़ाने का आह्वान करती है ताकि भारत में खाद्य उत्पादन और जलवायु सम्बन्धी भविष्य को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से जलवायु परिवर्तन से निपट सकने लायक और कम कार्बन वाले भूदृश्य तैयार किये जा सके।

विषय सूची

पुस्तक के बारे मे....3

जलवायु परिवर्तन : कारण एवं परिणाम....7

जलमग्न चावल की खेती : कार्बन के लिये सिंक या ग्रीनहाउस गैसों का स्रोत?....15

चावल प्रणाली में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को समझना....20

निचली, मध्यम और ऊंचे स्थानों वाली जमीनों में वर्षा पर आधारित चावल की खेती: तीन स्तरों का मामला....38

किसानों की चिंताएं और सम्भावित समाधान – अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्न (FAQs)....40

भारत में चावल की खेती का भविष्य....46

अवलोकन....49

जलवायु परिवर्तन : कारण एवं परिणाम

विज्ञान के विषयों पर आधारित प्रमुख पत्रिका 'नेचर' ने 10 जनवरी 2025 को एक लेख प्रकाशित किया था। इसका विषय था 'अर्थ ब्रीचेज 1.5 डिग्री सेल्सियस क्लाइमेट लिमिट फॉर द फर्स्ट टाइम'[1] (धरती ने पहली बार लांघी 1.5 डिग्री सेल्सियस की जलवायु सीमा)। इसमें लेखकों ने चेतावनी दी थी कि यह उल्लंघन इस बात का संकेत है कि हमारी जैव प्रजातियां जलवायु परिवर्तन के 'सुरक्षित जोन' की सीमा को लांघने के कगार पर पहुंच गयी हैं।

हमें कैसे ज्ञात होगा कि जलवायु में परिवर्तन हो रहा है?

सन् 1880 के दशक में द्वितीय औद्योगिक क्रांति के रूप में मानव इतिहास का एक नया अध्याय शुरू हुआ। इस दौरान प्रौद्योगिकी में तीव्र आधुनिकीकरण और उन्नयन के कारण कृषि और विनिर्माण तथा वैज्ञानिक अन्वेषण के क्षेत्रों में अप्रत्याशित मशीनीकरण हुआ। यंत्रीकरण बढ़ने से जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता भी बढ़ी। यह एक ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव था जिसने जलवायु पर बहुत बुरा असर डाला। इससे वह हवा जिसमें हम सांस लेते हैं, वह पानी जो हम पीते हैं और वह जमीन जिस पर हम चलते है और अपना भोजन उगाते हैं, वह सब बदल गये।

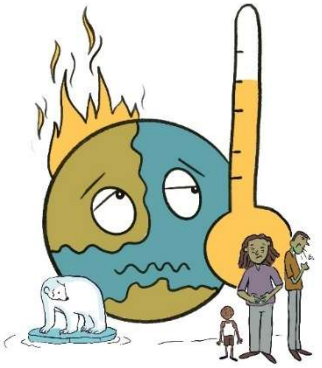

यह ऐसा भी समय था जब इंसानों ने जलवायु के विभिन्न तत्वों का सुव्यवस्थित रिकॉर्ड रखना शुरू किया, जिसमें पूरी दुनिया में औसत तापमान में होने वाले उतार-चढ़ाव का लेखा-जोखा भी शामिल है। इस प्रकार वैश्विक तापमान में उस तीव्र परिवर्तन की मात्रा को मापना सम्भव हुआ जो पिछली शताब्दी

[1] https://www.nature.com/articles/d41586-025-00116-0

में शुरु हुआ और इस सदी में भी जारी है। अनेक सरकारी और अंतर-सरकारी एजेंसियों ने इस बात को दर्ज किया है कि वर्ष 1880 के बाद से पिछले 10 साल सबसे गर्म रहे हैं। उनमें भी 2024 का साल बाकियों से ज्यादा गर्म रहा है।[2]

एक सामान्य पर्यवेक्षक के लिए यह स्पष्ट है कि चक्रवातों की बढ़ती संख्या के साथ मानसून ज्यादा अप्रत्याशित हो गया है। सर्दियां अपनी ठंड खोती जा रही हैं और गर्मियों में असहनीय लू का दौर लंबा होता जा रहा है। भयंकर तूफान, बाढ़, सूखा, जंगल की आग और भूस्खलन की खबरें अक्सर मिलती हैं। मौसम की चरम घटनाएं और उनके परिणामस्वरूप जान-माल का नुकसान अब बार-बार होने वाली वास्तविकता बन गई है।

लगभग 4.6 अरब वर्ष पहले पृथ्वी का जन्म होने के बाद से इसकी जलवायु में अनेक बार आमूल-चूल बदलाव हुए हैं। प्रमुख रूप से दर्ज की गयी सामूहिक विलुप्ति की पांच घटनाएं स्पष्ट रूप से जलवायु परिवर्तन से जुड़ी हुई हैं। कुछ मामलों में तो यह परिवर्तन लगभग उतनी ही तेजी से हुआ था जितना कि आज हो रहा है। सामूहिक विलुप्ति की कुछ घटनाओं में जलवायु परिवर्तन की गति इतनी धीमी थी कि उससे जीवन को उसके अनुरूप ढलने, उसमें विकसित होने और जीवित रहने का समय मिल गया। हालांकि जीवमंडल के विकास में सामूहिक विलुप्ति की घटनाएं होना सामान्य बात है लेकिन इस बार यह हमारी प्रजाति के लिए विनाशकारी साबित हो सकता है। इस बार मानव जाति सहित सभी जीवों का अस्तित्व खतरे में है। इसका क्या

[2] https://climate.nasa.gov/vital-signs/global-temperature/?intent=121#:~:text=Key%20Takeaway:,the%20latest%20available%2C%20updated%20annually.

कारण हो सकता है? इस बात के प्रमाण दिन-ब-दिन मजबूत होते जा रहे हैं कि मानवीय गतिविधियां, विशेष रूप से औद्योगिकीकरण और कृषि कार्यों में वृद्धि इसके लिए जिम्मेदार हैं।

पृथ्वी का जलवायु तंत्र अपने विभिन्न घटकों के बीच एक नाजुक संतुलन बनाता है जिससे धरती पर जीव बचे रहें

पृथ्वी बिल्कुल अनुकूल तापमान उपलब्ध कराती है, जो न तो बहुत गर्म होता है और न ही बहुत ठंडा ताकि इस पर जीवन फल-फूल सके। इसका वायुमंडल विभिन्न गैसों के संयोजन की परत से बना होता है जिससे सूरज की जितनी गर्मी जीवन के लिए जरूरी होती है, उतने का ही अवशोषण होता है, बाकी गर्मी विकिरण के माध्यम से अंतरिक्ष में वापस पहुंच जाती है। पृथ्वी का वायुमंडल यह भी सुनिश्चित करता है कि बाहरी अंतरिक्ष से हानिकारक विकिरण धरती पर प्रवेश न कर सके। वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों (GHG) के बढ़ते जमाव या सघनता की वजह से, विकिरण के जरिए अंतरिक्ष में वापस भेजी जाने वाली गर्मी का एक हिस्सा यहीं बचा रह जाता है क्योंकि ग्रीनहाउस गैसें वायुमंडल में एक रूकावट की तरह काम करती हैं। इस प्रक्रिया को ग्रीनहाउस गैसों की वजह से उत्पन्न ग्रीनहाउस प्रभाव के रूप में जाना जाता है। सबसे प्रमुख ग्रीनहाउस गैसों में कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), मीथेन (CH_4) नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) और जलवाष्प (H_2O) शामिल हैं। इनमें से हर गैस अलग अलग सीमा तक गर्मी को बांधकर रखती है और वायुमंडल में उनका अनुपात पृथ्वी के औसत तापमान को प्रभावित करता है।

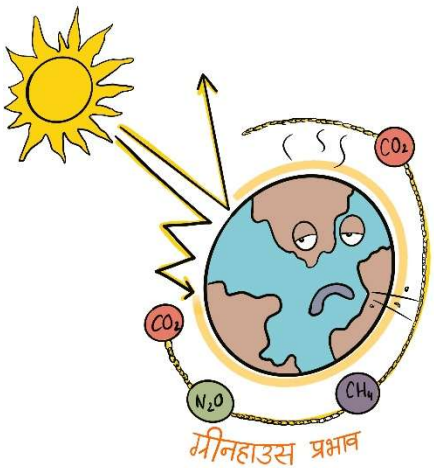

पृथ्वी के वायुमंडल, भूमि और महासागरों के बीच गर्मी और पानी का निरंतर आदान-प्रदान होता रहता है जो इस परत की गतिशील संरचना के कारण संभव हो पाता है। गैसें लगातार गतिमान रहती हैं, यह पानी और भूमि में समाती और निकलती रहती हैं और धरती पर जीवों द्वारा अवशोषित की जाती हैं। यह

एक-दूसरे और अन्य रसायनों के साथ परस्पर क्रिया करके जटिल यौगिक बनाती हैं जो विकास और उन्नति के लिए जरूरी हैं।

यहां निरंतर घूमने वाली गैस और प्रमुख ग्रीनहाउस गैस यानी कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) का एक उदाहरण प्रस्तुत है : धरती पर प्राथमिक उत्पादक यानी हरे पेड़ कार्बोहाइड्रेट का उत्पादन करते हैं जो धरती पर सभी तरह के जीवों के लिए ऊर्जा का जरूरी स्रोत है। वे फोटोसिंथेसिस के माध्यम से ऐसा करते हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें पानी, धूप और वातावरणीय CO_2 का प्रयोग किया जाता है। CO_2 में मौजूद कार्बन, शर्करा और अन्य कार्बोहाइड्रेट में परिवर्तित होता है और यह किसी पौधे का अभिन्न अंग बन जाता है, वहीं पानी से मिलने वाली ऑक्सीजन वातावरण में घुल जाती है। ऐसी हर जैव प्रजाति जो प्राथमिक उत्पादक नहीं है, वह भंडारित पौध खाद्य स्रोत पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर करती है।

यह कार्बन चक्र जारी रहता है क्योंकि शाकाहारी जीव पौधों से मिलने वाले भोजन को ग्रहण करते हैं और कार्बोहाइड्रेट से कार्बन प्राप्त करते हैं। वहीं, मांसाहारी जीव शाकाहारी जीवों को खाकर इसे प्राप्त कर लेते हैं। वह अपनी सांस के जरिए वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं। वहीं, पाचन क्रिया के दौरान उत्पन्न होने वाली मीथेन गैस (CH_4) हवा में उत्सर्जित होती है। जब जीवों की मौत होती है और उनका शरीर सड़कर समाप्त हो जाता है तो उनके शरीर का कार्बन वापस पर्यावरण में पहुंच जाता है।

कृषि एक मानव नियंत्रित प्रक्रिया है जो फसलों के रूप में बहुत भारी मात्रा में बायोमास का उत्पादन करती है। इस बायोमास में मौजूद कार्बन का क्या होता है? हर मौसम में इस बायोमास के कुछ हिस्से का उपयोग इंसान और अन्य जैव प्रजातियां करती हैं जबकि इसका बड़ा भाग झड़ी हुई पत्तियों, जड़ों और कृषि अवशेषों के रूप में मिट्टी में ही रह जाता है। मिट्टी में बचे यह जैव भाग सड़-गल जाते हैं और इस सड़न के कुछ अल्पकालिक उप-उत्पाद 'विषमपोषी श्वसन' नाम की प्रक्रिया के माध्यम से वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं। यह सड़न क्रिया का एक स्वाभाविक भाग है। हालांकि इस बायोमास का बाकी सड़ा गला हिस्सा 'ह्यूमस' या 'ह्यूमिक एसिड' में परिवर्तित हो जाता है। यह पोषक तत्वों से परिपूर्ण नम मिट्टी होती है जो अक्सर जंगलों में मिलती है। यह मिट्टी संचित कार्बन से भरपूर होती है।

'ह्यूमीफिकेशन' (एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें सूक्ष्मजीव मृत कार्बनिक पदार्थों, जैसे-पौधे और जानवर को अपघटित करके ह्यूमस नामक एक पदार्थ बनाते हैं) की समयरेखा मिट्टी और पर्यावरणीय स्थितियों के

संयोजन के हिसाब से अलग-अलग होती है। यह प्रक्रिया पहले दिन से शुरू होकर दो-तीन या छह महीनों तक भी जारी रह सकती है। यह मिट्टी में मौजूद जैव तत्वों और सूक्ष्मजीवों की प्रकृति पर निर्भर करता है। लघु श्रृंखला के सुगंधित कार्बनिक यौगिकों (compounds) का अपघटन करना सूक्ष्मजीवों के लिए आसान होता है। वहीं, दीर्घ श्रृंखला के सुगंधित या क्षारीय संरचना वाले कार्बन यौगिक जटिल प्रकृति के होते हैं और उनका अपघटन धीरे-धीरे होता है। मिट्टी में मौजूद रहने वाले यह सूक्ष्मजीव इन जटिल यौगिकों को छोटे और ज्यादा स्थिर रहने वाले हिस्सों में तोड़ देते हैं जो आगे अपघटन के लिहाज से प्रतिरोधी होते हैं। एक बार बनने के बाद यह ह्यूमस लंबे समय तक मिट्टी में बना रहता है और कार्बन के समग्र पृथक्करण में महत्वपूर्ण योगदान करता है।

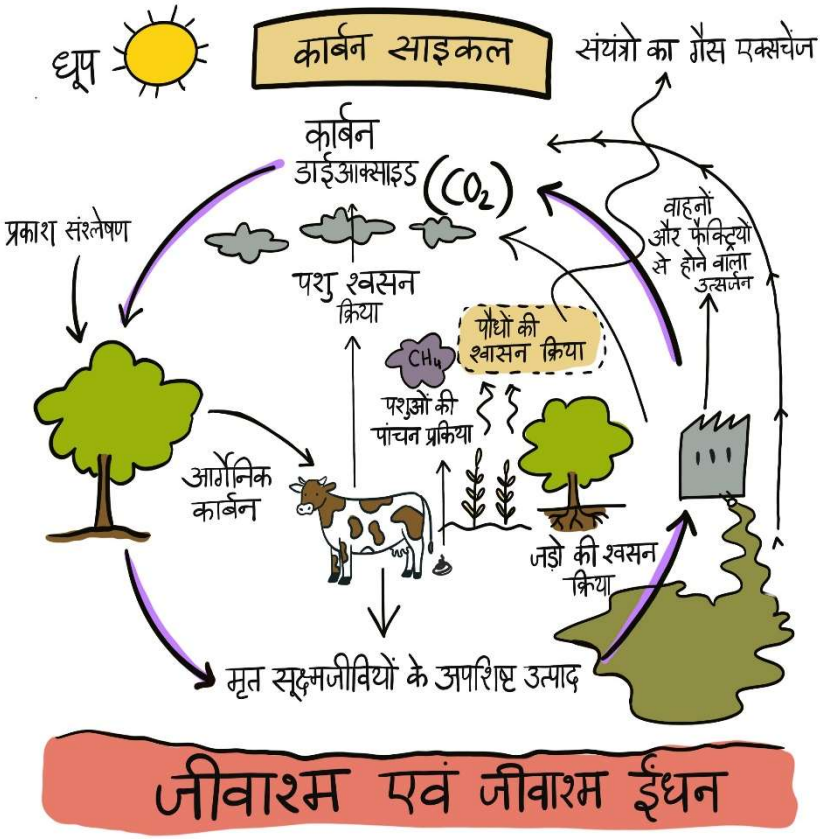

दो प्रक्रियाओं को समझना महत्वपूर्ण है : पहली प्रक्रिया कार्बन फिक्सिंग है, जब **CO_2** के **C** को पौधों द्वारा ऑर्गेनिक यौगिकों में रूपांतरित कर दिया जाता है उसे पृथ्वी पर मौजूद जीवों द्वारा तुरंत उपयोग में लाया जा सकता है। दूसरी प्रक्रिया कार्बन पृथक्करण की है जो **C** को मिट्टी, महासागरों और जीवाश्म ईंधन जैसे ऑर्गेनिक तत्वों के साथ एकीकृत करने की प्रक्रिया है, जहां इसे लंबे समय तक संग्रहीत किया जा सकता है और इससे यह आसानी से वायुमंडल में दोबारा प्रवेश नहीं कर पाता। ये दोनों प्रक्रियाएं ग्लोबल वार्मिंग को कम करने के लिए आवश्यक है

पिछले कुछ दशकों में धरती के तापमान में अभूतपूर्व वृद्धि क्यों हो रही है?

भूमि और जल इकाइयों से होने वाले उत्सर्जन में वृद्धि के कारण वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के संतुलन में आये बदलाव की वजह से ऐसा हुआ है।

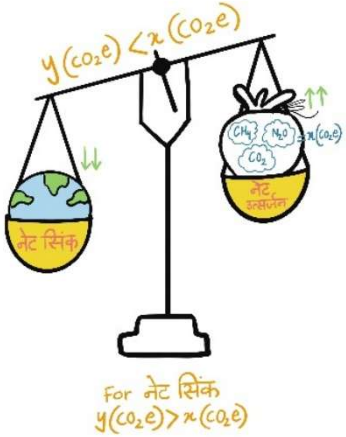

औद्योगिकीकरण के साथ ऐसी अनेक गतिविधियां मशीनों से की जाने लगी हैं जो पहले कभी इंसान किया करते थे। अनेक मशीनों को ऊर्जा की जरूरत होती है जो या तो जीवाश्म ईंधन या फिर लकड़ी से मिलती है। इन्हें जब जलाया जाता है तो बहुत भारी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल में पहुंच जाती है। बढ़ती हुई आबादी का पोषण करना भी जरूरी है। इसका मतलब यह है कि और ज्यादा बड़े भूभाग में खेती की जा रही है और उत्पादन बढ़ाने के लिए नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों का अक्सर इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए औद्योगिकरण और कृषि उन्नयन के साथ ज्यादा से ज्यादा मात्रा में CO_2, CH_4 और N_2O वायुमंडल में घुल रही है और कम मात्रा में कार्बन धरती पर वापस लौट रहा है। यह समझ पाना आसान है कि किस तरह औद्योगिकीकरण और ईंधन को जलाने से वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के स्तर में वृद्धि होती है और इस तरह उससे जलवायु परिवर्तन और वैश्विक तापमान में बढ़ोत्तरी होती है। हालांकि ग्रीनहाउस गैसों और ग्लोबल वार्मिंग में एक बड़े योगदानकर्ता के रूप में कृषि क्षेत्र भी जांच के घेरे में है। अगर इसे ठीक करके प्रकाश संश्लेषण CO_2 को धरती पर वापस लाने में मदद करता है

तो फसलों को भी यह कार्य जरूर करना चाहिये। फिर कृषि जलवायु पर आखिर प्रतिकूल प्रभाव कैसे डाल रही है?

आबादी बढ़ने के साथ ही भोजन की मांग भी बढ़ी और इसे पूरा करने के लिये कृषि क्षेत्र में विस्तार करने के उद्देश्य से जंगलों और आर्द्रभूमियों (वेटलैंड्स) को खत्म किया गया जिससे ग्रीनहाउस गैसों का और भी ज्यादा उत्सर्जन हुआ।

बड़े पैमाने पर चावल की खेती करने वाले देश भी मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार हैं। चीन, भारत और दक्षिण एशिया के अन्य देशों की चावल की खेती से जुड़े ग्रीन हाउस गैसों के उल्लेखनीय उत्सर्जन के लिए आलोचना हुई है। ऐसे में जलवायु परिवर्तन में कृषि (खासतौर पर चावल की खेती) की भूमिका को समझना जरूरी हो जाता है। साथ ही इस बात पर भी विचार-विमर्श आवश्यक हो जाता है कि किसी भी तरह का दुष्प्रभाव कम करने के लिए अपनी कृषि पद्धतियों में सुधार के कौन-कौन से तरीके संभव हो सकते हैं।

क्या मिट्टी की कार्बन अवशोषण क्षमता को बढ़ाकर प्रतिकूल जलवायु परिवर्तन को पलटा जा सकता है?

वर्ष 2015 में पेरिस में हुई 21वीं कांफ्रेंस ऑफ द पार्टीज (COP21) में मानव की गतिविधियों के कारण होने वाले ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन की भरपाई करने के लिये वैश्विक मृदा आर्गेनिक कार्बन में प्रतिवर्ष 0.4 प्रतिशत की वृद्धि करने

का आकांक्षात्मक प्रस्ताव रखा गया था। इस '4 प्रति मिल' या '4 प्रति 1000' प्रस्ताव का उद्देश्य वायुमंडल से पर्याप्त कार्बन डाइऑक्साइड सोखकर उसे मिट्टी में एकत्र करना था जिससे जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के संकट का समाधान हो सके।

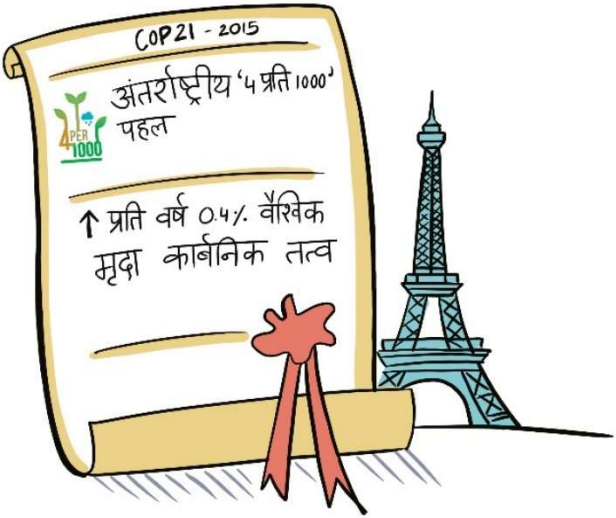

वैश्विक आधार पर मृदा ऑर्गेनिक कार्बन में 0.4 प्रतिशत की वृद्धि करना वास्तव में बहुत मुश्किल है। मिट्टी का एक बड़ा भाग ऑर्गेनिक कार्बन को समायोजित करने के लिये आमतौर पर उपलब्ध नहीं है। उदाहरण के लिये धरती पर ऐसे बड़े क्षेत्र हैं जहां मिट्टी अपनी कार्बन संतृप्ति की अधिकतम सीमा को पहले ही छू चुकी है। साथ ही समुद्र तल पर, रेगिस्तानों में, और बंजर भूमि की मिट्टी में ऑर्गेनिक कार्बन स्वाभाविक रूप से बहुत कम है और इसके अच्छे कारण हैं। लेकिन कृषि भूमि अलग है। चूंकि मिट्टी में ऑर्गेनिक कार्बन को ज्यादातर हानि कृषि के कारण हुई है, इसलिये अगर इस प्रक्रिया को उलट दिया जाए तो जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग की समग्र समस्याओं को कम से कम आंशिक रूप से कम किया जा सकता है।

जलमग्न चावल की खेती : कार्बन के लिये सिंक या ग्रीनहाउस गैसों का स्रोत?

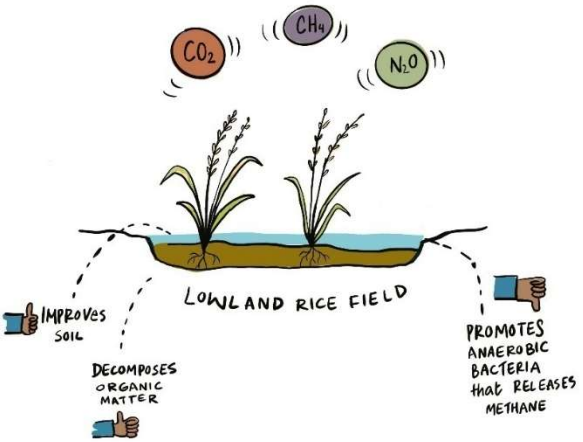

चावल की खेती का प्रारम्भिक इतिहास स्पष्ट नहीं है। निश्चित रूप से मानव को शिकारी झुंडों से कृषि समुदाय में रूपांतरित करने में इस फसल की भूमिका रही है, जिसने एशिया में कुछ सबसे शुरुआती सभ्यताओं के केंद्रों को स्थापित किया है।[3] यह काफी प्राचीन इतिहास है, जैसा कि चीन के कुछ पुरातात्विक स्थलों से 8000 वर्षों से भी अधिक पुराने चावल के दानों की खोज से पता चलता है। चावल तथा अन्य उत्पादों की खेती भूमि का एक बड़ा ऐतिहासिक परिवर्तन था और यह ग्लोबल वार्मिंग के कारणों में से एक बन गया। हालांकि, यहां हमारा ध्यान ऐतिहासिक पहलू पर नहीं, बल्कि चावल की खेती से होने वाले ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने के वर्तमान उपायों और संभावित पद्धतियों पर है।

चावल दुनिया की लगभग आधी आबादी के भोजन का प्राथमिक स्रोत है। भारत में 70 करोड़ से अधिक लोगों का प्रमुख भोजन चावल ही है। लगभग 4.4 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर चावल की खेती होती है।

---

[3] https://journals.uclpress.co.uk/ai/article/id/594/

चावल की खेती के अनेक तरीके उपलब्ध हैं, मगर उष्णकटिबंधीय मानसून वाली जलवायु में चावल उत्पादन की प्रमुख पद्धति जलमग्न चावल की है जो निचले स्थानों पर स्थित भूमि में चावल उत्पादन के लिये अपनायी जाती है। इस पद्धति में खेतों में पानी का ठहराव बनाए रखा जाता है, जिससे एक अर्द्ध-जलीय वातावरण बनता है, जिसमे चावल के पौधे उगते हैं। इस पद्धति के कई लाभ हैं, जैसे- खरपतवारों की वृद्धि रूकती है, अच्छी फसल सुनिश्चित होती है, पोषक तत्वों की उपलब्धता, सूखे की आशंका कम और अक्सर अधिक उपज मिलती है।

कुछ भी हो, जलवायु पर इसका प्रभाव ज्यादा जटिल है।

एक ओर, जलमग्न होने से कार्बन अवशोषण में वृद्धि होती है। चावल के खेतों में लगातार पानी भरा रहने की वजह से पत्तियां, तने और जड़ें मिट्टी की सतह पर एकत्र हो जाती हैं और मिट्टी के ऑर्गेनिक कार्बन में वृद्धि करती हैं। पानी के अंदर की स्थितियां ऑक्सीजन को सीमित कर देती हैं, इसलिये यह ऑर्गेनिक तत्व धीरे-धीरे अपघटित होता है जिससे कार्बन को ठहरने और मिट्टी में अवशोषित होने का अवसर मिल जाता है। इसके परिणामस्वरूप जलमग्न चावल की खेती वाली मिट्टी गैर जलमग्न तरीकों में प्रयोग होने वाले खेतों की तुलना में काफी लंबे समय तक चलने वाला कार्बन बनाए रखती है।

दूसरी ओर, जलमग्नता से हवा रुक जाती है, जिससे मिट्टी में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और एनारोबिक (anaerobic) परिस्थितियां पैदा हो जाती हैं। ऐसे वातावरण में जीवित रहने वाले प्रमुख जीव एनारोबिक (anaerobic) जीवाणु हैं जो अपनी चयापचय क्रियाओं के लिए ऑक्सीजन के बजाय कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) और नाइट्रेट का उपयोग करते हैं। ये जीवाणु जलमग्न कार्बनिक पदार्थों पर निर्भर होते हैं और चयापचय के उपोत्पाद के रूप में मीथेन (CH_4) छोड़ते हैं। इसकी वजह से इन्हें मीथेनोजेनिक जीवाणु (methanogenic bacteria) या मीथेनोजेन्स (methanogens) कहा जाता है। निचले क्षेत्रों और चावल के खेत, जहां चावल की खेती लगातार जलभराव के बीच की जाती है, मीथेन गैस के सबसे

बड़े 'मानवजनित' या मानव-चालित योगदानकर्ताओं में से एक है। चावल की खेती हर साल वैश्विक मीथेन उत्सर्जन का लगभग 5-20 प्रतिशत भाग उत्पन्न करती है[4] और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि दुनिया की आबादी और उसकी खाद्य आवश्यकता में वृद्धि के साथ यह भी बढ़ता ही जाएगा।

इस प्रकार, सार यह है कि जलमग्न कृषि पद्धति से ऑर्गेनिक तत्व का धीरे-धीरे अपघटन होता है और उससे उत्पन्न कार्बन के अवशोषण के माध्यम से मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है। मगर साथ ही यह मीथेन गैस छोड़ने वाले एनारोबिक (anaerobic) जीवाणुओं को बढ़ावा देता है।

हमारी जलवायु पर विभिन्न गैसों के पड़ने वाले प्रभावों पर चर्चा करते समय विभिन्न ग्रीनहाउस गैसों के 'ग्लोबल वार्मिंग पोटेंशियल' को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है (बाद के पैराग्राफ्स में इसके बारे में और अधिक जानकारी दी गयी है) । जब कोई प्रणाली वायुमंडल में मौजूद कार्बन को अवशोषित कर सकती है तो उसे कार्बन 'सिंक' कहा जाता है। अगर किसी प्रणाली में कार्बन अवशोषण उससे होने वाले कुल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन से अधिक है तो वह एक 'नेट सिंक' बन जाती है। परिणामस्वरूप, चावल का खेत ग्रीनहाउस गैसों का केवल एक स्रोत ही नहीं होता, बल्कि एक सिंक और नेट सिंक भी हो सकता है।

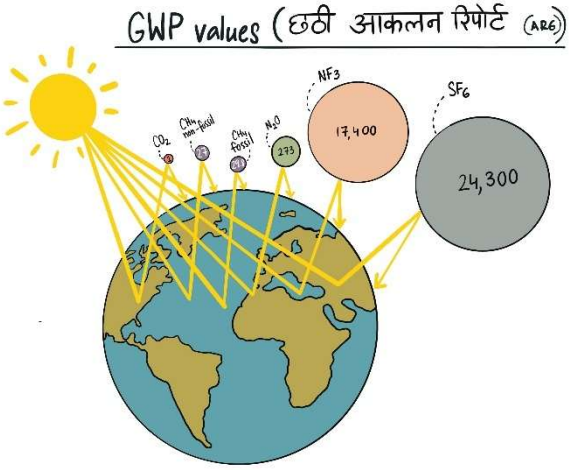

[4] https://www.ipcc-nggip.iges.or.jp/public/gl/guidelin/ch4ref5.pdf

चावल के खेतों में कार्बन पृथक्करण बढ़ाने और इसे नेट सिंक बनाने की ओर संतुलन को झुकाने की रणनीतियों की तलाश

भारतीय कृषि भूमि में औसत मृदा ऑर्गेनिक कार्बन केवल लगभग 0.5% है। भारत के पूर्वी राज्यों के कई भागों में चावल की खेती हर साल दो बार की जाती है। इसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में मृदा ऑर्गेनिक कार्बन और भी कम हो गया है। यह दिलचस्प है कि प्रबंधित प्रणाली के तहत इन मृदाओं का 'कार्बन संतृप्ति मान' लगभग 0.8 से 1.2% है। यह मान दर्शाता है कि मिट्टी में कार्बन को अवशोषित करने की पर्याप्त संचयी क्षमता (सिंक क्षमता) है। अगर हम भारत की शेष कृषि भूमि की मिट्टी में इतनी मात्रा में कार्बन को संचित करने में सफल हो जाते हैं, तो हम देश में चावल की खेती से होने वाले उत्सर्जन प्रभाव को कम कर सकते हैं।

चूंकि ग्रीनहाउस गैसों के समस्त उत्सर्जन के प्रमुख स्रोतों में शामिल किये जाने वाले तत्वों अर्थात ठहरे हुए पानी और रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग पूरी तरह बंद करना व्यावहारिक रूप से सम्भव नहीं है, इसलिये चावल के खेतों को नेट सिंक बनाये रखने वाली रणनीतियों की दिशा में कार्य करना तर्कसंगत है।

अब 'प्रकृति में संतुलन' की तरफ लौटें तो एक उदाहरण दिया जा सकता है कि मीथेन उत्पन्न करने वाले जीवाणु या मीथेनोजेन्स पानी के अंदर एनारोबिक (anaerobic) परिस्थितियों में फलते-फूलते हैं। मगर विशिष्ट जीवाणुओं का एक और समूह है जो इस CH_4 के कुछ भाग का ऑक्सीकरण करता है। इन जीवाणुओं को 'मीथेनोट्रोफ्स' (methanotrophs) कहा जाता है। साथ ही मीथेन-ऑक्सीकरण की प्रक्रिया जो मीथेन उत्पादन के साथ एक प्रतिक्रिया है, उसे 'मीथेनोट्रॉफी' (methanotrophy) कहा जाता है। यहां वास्तविक बात यह है कि मीथेन के ऑक्सीकरण के लिए आसपास थोड़ी ऑक्सीजन की उपस्थिति आवश्यक है, और ऑक्सीजन की जरूरत केवल इस रासायनिक प्रतिक्रिया तक ही सीमित नहीं है। यह समझना आवश्यक है कि मीथेनोट्रोफ स्वयं एक 'ओब्लिगेट एरोब' (obligate aerobe) हैं, अर्थात उनके जीवित रहने के लिए ऑक्सीजन आवश्यक है।

संयोग से, मीथेन ही केवल ऐसी ग्रीनहाउस गैस नहीं है जो चावल के खेतों से उत्पन्न होती है। कार्बन डाई ऑक्साइड एक प्रमुख ग्रीनहाउस गैस है। हालांकि यह उतनी असरदार नहीं है जितनी कि मीथेन या नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) हैं। जलवायु पर कृषि के प्रभाव के बारे में विचार करते समय CO_2, CH_4 और N_2O पर विचार करना आवश्यक है। हम आगे के पैराग्राफ्स में इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

इस परिदृश्य को देखते हुए कृषि वैज्ञानिक CH_4 और N_2O जैसी ग्रीनहाउस गैसों के उत्पादन/उत्सर्जन से संतुलन को हटाकर कार्बन अवशोषण की ओर मोड़ने के तरीके विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं। किसी सतत कृषि प्रबंधन पद्धति को लागू करने के लिये यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि पानी की बदलती उपलब्धता पर मिट्टी कैसे प्रतिक्रिया करती है, मिट्टी और पानी मृदा के सूक्ष्मजीवों की

गतिविधि को कैसे प्रभावित करते हैं, चावल की विभिन्न किस्में मिट्टी के साथ कैसे अंतःक्रिया करती हैं और ग्रीनहाउस गैसों के उत्पादन और उत्सर्जन में मिट्टी की संरचना और मात्रा क्या भूमिका निभाती है। इस संबंध में वैश्विक तापमान में वृद्धि के प्रभावों को कम करने के लिए अधिक सतत और सस्ती कृषि प्रौद्योगिकियों तथा पर्यावरण के अनुकूल चावल की खेती प्रणालियों की निरंतर खोज की जा रही है।

इस प्रकार, प्रणाली के भौतिक, रासायनिक और जैविक घटकों के बीच घनिष्ठ अंतरक्रिया होती है - अर्थात जल, मिट्टी और मिट्टी में मौजूद विविध यौगिक, ऑक्सीजन की उपस्थिति या अनुपस्थिति से प्रेरित रासायनिक प्रतिक्रियाओं में भाग लेते हैं। इसके अलावा मृदा सूक्ष्मजीव जैसे जैविक कारक भी हैं जिनकी चयापचय गतिविधियों का चावल के पौधों के आधार पर पर्यावरण पर अपना विशिष्ट प्रभाव होता है।

चावल प्रणाली में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को समझना

मीथेन

जलमग्न मिट्टी में उत्पन्न CH4 गैस को वायुमंडल में छोड़ने की आवश्यकता होती है और दिलचस्प बात यह है कि चावल का पौधा इसमें मदद करता है।

चावल के खेत से मीथेन तीन तरीकों से वायुमंडल में पहुंचती है :

1. विसरण (फैलाव) के माध्यम से, जब गैस अपने उद्गम स्थल से आसपास के क्षेत्रों में और अंततः वायुमंडल में फैल जाती है। पानी की उपस्थिति से यह प्रक्रिया काफी धीमी हो जाती है।
2. उफान से, गैस बुलबुलों के रूप में मिट्टी से ऊपर उठकर आसपास के पानी में और फिर वायुमंडल में पहुंच जाती है। यह सबसे ज़्यादा चावल के खेतों में देखा जाता है। दिलचस्प बात यह है कि जैविक खाद के इस्तेमाल से भी यह उफान बढ़ जाता है।
3. 'प्लांट मीडिएटेड ट्रांसपोर्ट' के माध्यम से, जो ठंडी समशीतोष्ण जलवायु में चावल के खेतों से वायुमंडल तक मीथेन की आवाजाही का सबसे सामान्य तरीका है, जहां 90% गैस इसी विधि से उत्सर्जित होती है। चावल की खेती में देखी गयी कुछ अनोखी अनुकूलन प्रक्रियाओं के कारण ऐसा संभव होता है।

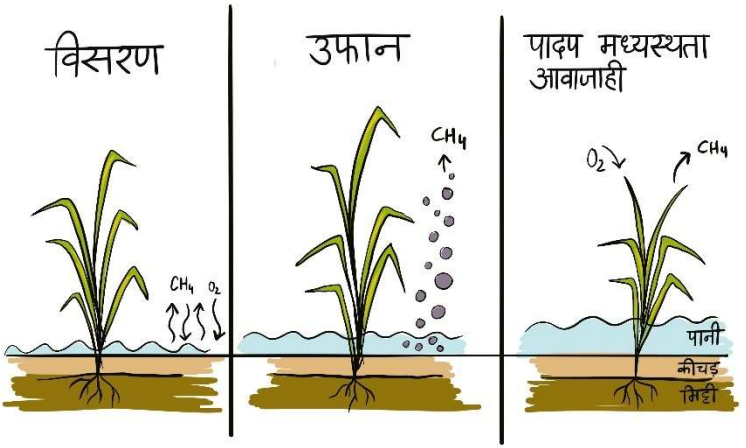

चावल के पौधों ने अर्द्धजलीय परिस्थितियों में जीवित रहने के तरीके विकसित कर लिये हैं

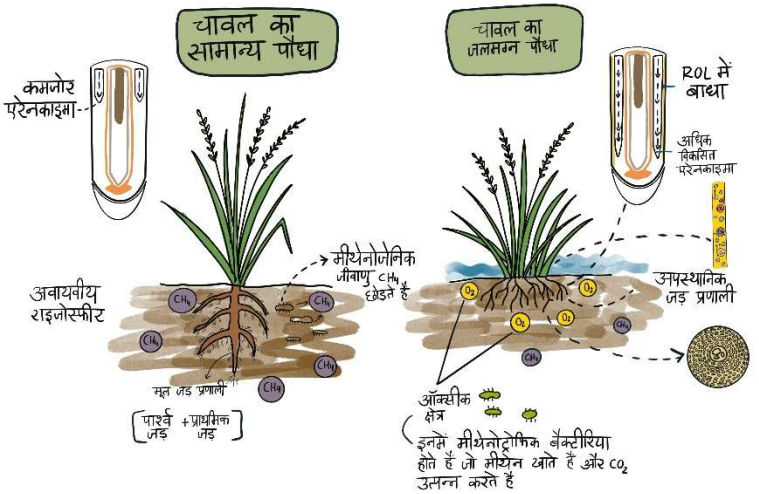

जलमग्न परिस्थितियां सामान्यत: गैसों के किसी भी तरह के विचरण के उपयुक्त नहीं होती हैं। चाहे वह वायुमंडल से पौधों की जड़ों तक हो या फिर विपरीत दिशा में अर्थात जड़ प्रणाली के आसपास की जल-जमाव वाली मिट्टी से वायुमंडल तक। चावल के पौधों में कुछ रूपात्मक अनुकूलन विकसित हो गए हैं जो उन्हें इन चुनौतियों से निपटने में सक्षम बनाते हैं।

पौधों में जो एक प्रमुख विशेषता विकसित हुई है उसे 'एरेनकाइमा' (aerenchyma) कहते हैं। यह एक विशिष्ट ऊतक है जो कई जलीय और अर्द्ध-जलीय पौधों में पाया जाता है। यह कोशिकाओं के बीच हवादार स्थानों का एक व्यापक जाल होता है जो तब तक बढ़ता रहता है जब तक पौधा पानी में रहता है। एरेनकाइमा द्वारा निर्मित नलिकाएं जड़ों की लंबाई के साथ-साथ तनों और पत्तियों तक फैली होती हैं। इससे आसपास जलभराव होने पर भी गैसों के आदान-प्रदान के रास्ते बनते हैं।

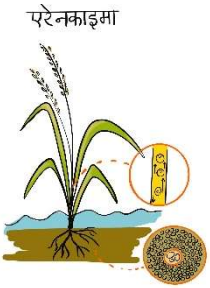

चावल जैसे जलमग्न मिट्टी वाले पौधों में भी एक विस्तृत अपस्थानिक जड़ प्रणाली विकसित हुई है। इसमें सरल मूल जड़ प्रणाली की तुलना में ज्यादा एरेनकाइमा होते हैं। अपस्थानिक जड़ प्रणालियों में छेदों की संख्या भी अधिक होती हैं। इनका आकार-प्रकार जिसमें बड़ा सतह क्षेत्र, गहराई, मोटाई और पार्श्व जड़ों की संख्या शामिल है, गैस परिवहन को और बेहतर बनाता है। एरेनकाइमा सामान्यत: जड़ के सिरे से ठीक पहले समाप्त हो जाता है।

यहां 'राइजोस्फीयर' (rhizosphere) भी याद रखने योग्य एक और महत्वपूर्ण शब्द है जो किसी पौधे की जड़ प्रणाली के आसपास के वातावरण को कहते हैं। राइजोस्फीयर वह स्थान है जहां पौधे के ऊतक मिट्टी, पानी और मिट्टी के सूक्ष्मजीवों के सीधे संपर्क में आते हैं और जहां भौतिक, रासायनिक और जैविक घटकों के बीच एक विस्तृत परस्पर क्रिया होती है।

हालांकि जलभराव की स्थिति में राइजोस्फीयर एनारोबिक (anaerobic) बन सकता है। इसमें ऐसे क्षेत्र भी शामिल होते हैं जो जड़ों से रिसने वाली ऑक्सीजन के कारण 'ऑक्सीक' होते हैं। एनारोबिक (anaerobic) क्षेत्रों में मीथेनोजेनिक बैक्टीरिया की सांद्रता होती है जो CH_4 उत्पन्न करते हैं। यह CH_4 अस्थायी रूप से राइजोस्फीयर में जमा हो जाता है। ऑक्सीक क्षेत्रों में मीथेनोट्रोफिक बैक्टीरिया हो सकते हैं जो कम से कम इसके कुछ हिस्से पर काम करते हैं।

पौधे के 'स्ट्रॉ' के माध्यम से गैस की आवाजाही की जटिल प्रकृति

चावल का पौधा अपने विस्तृत एरेनकाइमा के साथ गैस की आवाजाही में किस तरह से मध्यस्थता करता है, इसे समझाने का एक आसान तरीका यह है कि हर पौधे को मिट्टी में फंसी एक नली या स्ट्रॉ के रूप में देखा जाए। इस स्ट्रॉ को घेरे हुए राइजोस्फीयर में मौजूद गैसें अपनी सांद्रता के आधार पर ऊपर या नीचे अर्थात किसी भी दिशा में बह सकती हैं। यह एक ऐसा मार्ग है जिसके माध्यम से संचित मीथेन वायुमंडल में प्रवेश करती है। यह 'प्रत्यक्ष परिवहन प्रणाली' CH_4 को मिट्टी के ऑक्सीकृत क्षेत्रों से गुजरने का रास्ता देती है जहां मीथेनोट्रोफिक जीवाणु घुली हुई ऑक्सीजन की थोड़ी मात्रा का उपयोग करके इसे ऑक्सीकृत कर सकते हैं। इससे ही CO_2 उत्पन्न होती है।

ऑक्सीजन एक प्रमुख गैस है जो मीथेन के विपरीत दिशा में बढ़ती है। जलभराव की स्थिति में जड़ प्रणालियों को गहराई और मजबूती से बढ़ने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। यह वायुमंडल से चावल के जलमग्न पौधे के एरोकाइमा के माध्यम से जड़ के सिरे तक पहुंचती है। पादप कोशिकाएं पूरी तरह से अभेद्य नहीं होती हैं, उनकी कोशिका भित्ति छिद्रयुक्त होती है। इन छेदों का आकार 3.5 से 5.2 नैनोमीटर होता है। ये छिद्र पौधे और उसके आसपास के वातावरण, राइजोस्फीयर के बीच जल, लवण और गैसों का आदान-प्रदान करने में सहायक होते हैं। इस तरह जब वायुमंडल से ऑक्सीजन जड़ के रास्ते से नीचे की ओर बढ़ती है, तो कुछ ऑक्सीजन

इन छेदों से 'रेडियल ऑक्सीजन लॉस' (ROL) नामक प्रक्रिया के माध्यम से बाहर निकल जाती है।

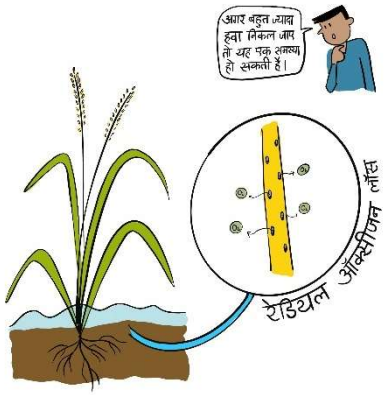

चावल के पौधे जिस पानी में डूबे होते हैं, उसके वातावरण में वायु संचार और ऑक्सीकरण के लिए ROL आवश्यक है। ROL का एक स्पष्ट परिणाम यह है कि यह आसपास के मीथेनोट्रोफिक बैक्टीरिया की गतिविधि को बढ़ाता है और वे CH_4 का ऑक्सीकरण करके CO_2 उत्पन्न करना शुरू कर देते हैं। CO_2 एक ग्रीनहाउस गैस है जिसका ग्लोबल वार्मिंग पोटेंशियल (GWP) कम होता है। इसके अलावा राइजोस्फीयर में ऑक्सीजन की वृद्धि मिट्टी में सामान्य एरोबिक सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाने में सहायक होती है। सिरे तक पहुंचने से पहले ROL की ज्यादा अधिकता हानिकारक होती है क्योंकि मिट्टी में गहराई तक बढ़ने के लिए ऑक्सीजन आवश्यक है। इस कमी को दूर करने के लिए पौधों में कई तरीके विकसित हुए हैं।

जड़ों से रेडियल ऑक्सीजन लॉस (ROL) को कम करने के लिये अवरोध बनाना

आइए, स्ट्रॉ के रूपक पर चर्चा को आगे बढ़ाते हैं। मान लीजिये कि ROL को कम करने की एक रणनीति के रूप में केवल निचले सिरे से पहले वाले हिस्से को खुला छोड़कर स्ट्रॉ की बाकी पूरी लंबाई को एक टेप से सील कर दिया गया है। ऐसे स्ट्रॉ में ऊपर से नीचे की ओर जाने वाली ऑक्सीजन तब तक बाहर नहीं निकलेगी जब तक वह सिरे तक नहीं पहुंच जाती। जड़ प्रणालियां अपने 'एक्सोडर्मिस' यानी पौधे की जड़ प्रणाली की बाहरी सुरक्षात्मक परत में एक अवरोध विकसित कर लेती हैं जो ROL को केवल जड़ों के सिरे तक ही सीमित रखता है।

एक्सोडर्मिस में उपस्थित टेप जैसा अवरोध वास्तव में घनी कोशिकाओं की एक परत होती है जो 'लिग्निन' और 'सुबेरिन' जैसे मजबूत मोम जैसे पॉलिमर (waxy polymer) की परत से ढंकी होती है। पॉलिमर का यह जमाव कोशिका भित्ति में छिद्रों के आकार को छोटा कर देता है। कुछ अध्ययनों से यह भी पता चला है कि जब मिट्टी में विषाक्त पदार्थ होते हैं तो जड़ों पर सुबेरिन की कई परतें जम जाती हैं। ऐसा 'सुबेराइजेशन' तनाव की स्थिति जैसे कि वातावरण में अत्यधिक नमक, कैडमियम या अमोनियम की

उपस्थिति या सूखे की स्थिति में भी देखा जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सुबेरिन की भूमिका जड़ों में स्थित पादप कोशिकाओं को आस पास की किसी भी हानि से बचाना है।

एक्सोडर्मिस में उपस्थित टेप जैसा अवरोध वास्तव में घनी कोशिकाओं की एक परत होती है जो 'लिग्निन' और 'सुबेरिन' जैसे मजबूत मोम जैसे पॉलिमर (waxy polymer) की परत से ढंकी होती है। पॉलिमर का यह जमाव कोशिका भित्ति में छिद्रों के आकार को छोटा कर देता है। कुछ अध्ययनों से यह भी पता चला है कि जब मिट्टी में विषाक्त पदार्थ होते हैं तो जड़ों पर सुबेरिन की कई परतें जम जाती हैं। ऐसा 'सुबेराइजेशन' तनाव की स्थिति जैसे कि वातावरण में अत्यधिक नमक, कैडमियम या अमोनियम की उपस्थिति या सूखे की स्थिति में भी देखा जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सुबेरिन की भूमिका जड़ों में स्थित पादप कोशिकाओं को आस पास की किसी भी हानि से बचाना है।

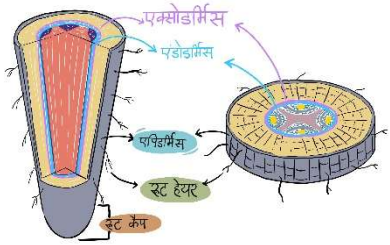

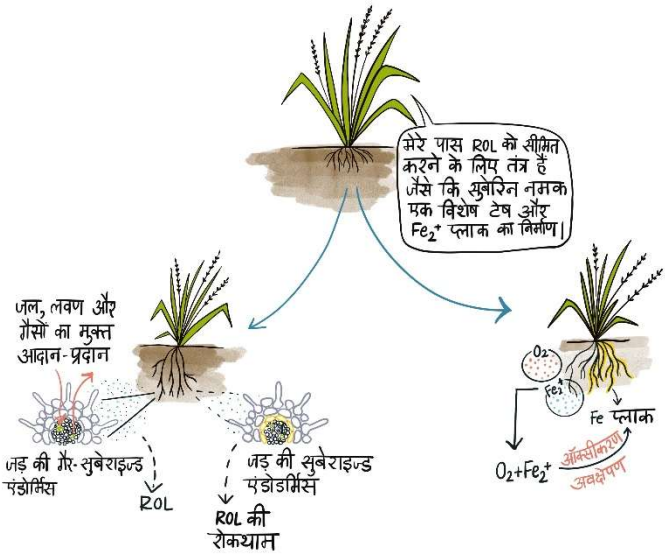

पौधों ने कुछ अन्य तरीके विकसित कर लिये हैं जो ROL अवरोध उत्पन्न करते हैं। जब ऑक्सीजन मिट्टी के अंदर रिसती है तो वह पानी में घुले लौह आयन (Fe2+) का ऑक्सीकरण करती है, जो फिर ठोस होकर लौह प्लाक का गठन करते हैं और ROL अवरोध का निर्माण करते हैं।

सुबेरिन या लौह प्लाक जैसे सुरक्षात्मक भौतिक अवरोधों का एक दूसरा पहलू भी है जिस पर विचार किया जाना चाहिए। ये न केवल ऑक्सीजन के रिसाव को बल्कि CH_4 के प्रवेश को भी रोकते हैं। ये न केवल जहरीले पदार्थों बल्कि पानी और पोषक तत्वों के प्रवेश को भी रोकते हैं। जड़ प्रणालियों की ऑक्सीजन की आवश्यकता के आधार पर पौधों की जड़ों में ROL उसके जीवन चक्र के दौरान बदलता रहता है क्योंकि यह अंकुरण अवस्था से लेकर कोपल निकलने, पुष्पगुच्छ और इसी तरह पूर्ण विकसित अवस्था तक मौजूद रहता है। इसके अलावा, चावल की विभिन्न किस्मों की जड़ में छिद्रों की प्रकृति अलग-अलग होती हैं। साथ ही ROL को रोकने के लिए अलग-अलग अनुकूलन होते हैं और इस प्रकार ऑक्सीकरण दर भी अलग-अलग होती है। इस वजह से कुछ किस्में दूसरों की तुलना में CH_4 ऑक्सीकरण की ऊंची दरें दर्शाती हैं और चावल के खेतों से CH_4 उत्सर्जन को कम करने के लिए अधिक अनुकूल होती हैं।

मीथेन उत्पादन और वायुमंडल में इसके उत्सर्जन को प्रबंधित करने के तरीके

मीथेन को या तो मिट्टी में इसके उत्पादन को कम करके, या इसे मिट्टी से बाहर निकलने से रोककर वायुमंडल में पहुंचने से रोका जा सकता है।

1. **मीथेन उत्पादन को प्रबंधित करने के लिए नमी का प्रबंधन या जल विज्ञान संबंधी उपाय**

a. **खेत को बारी-बारी से गीला करना और सुखाना (AWD):** मीथेन उत्पादन के लिए लंबे समय तक एनारोबिक (anaerobic) परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थितियां तब बन जाती हैं जब खेत लंबे समय तक जलमग्न रहता है। जैसा कि दर्शाया गया है कि चावल के खेतों में लगातार पानी भरने की पारंपरिक विधि के बजाय गीली और सूखी स्थितियों के बीच बारी-बारी से काम करने का तरीका चुनने से मीथेन उत्सर्जन में भारी कमी आती है। इस विधि में सिंचाई तब तक रोक दी जाती है जब तक मिट्टी में जल स्तर सतह से लगभग 15 सेंटीमीटर नीचे नहीं गिर जाता। इसके बाद खेत को लगभग पांच सेंटीमीटर तक फिर से पानी से भर दिया जाता है। पानी की गहराई की निगरानी और सिंचाई समय-सारिणी का पालन करने के लिए खेत में एक छेदयुक्त PVC ट्यूब (जिसे आमतौर पर पानी का पाइप कहा जाता है) लगाई जाती है। इस विधि से सिंचाई के

लगभग 30% पानी की बचत होती है और उपज का कोई नुकसान हुए बगैर मीथेन का 40-50% कम उत्सर्जन होता है।

b. **चावल का बीज सीधे तौर पर बोना (DSR) :** पहले नर्सरी में चावल के पौधे उगाने और फिर उन्हें पानी से भरे खेतों में रोपने के बजाय बीजों को सीधे तौर पर सूखी या नम भूमि में बोया जाता है और फिर उन्हें बिना जल-जमाव वाली परिस्थितियों में उगाया जाता है। हालांकि इससे कुछ हानियां भी होती हैं, जैसे- ज्यादा खरपतवारों का उगना। लेकिन अगर इन जोखिमों का ठीक तरीके से प्रबंधन किया जाए तो इससे पानी की खपत, श्रम लागत और मीथेन उत्पादन में कमी आती है और किसानों की शुद्ध आय में वृद्धि भी होती है।

c. टेंसियोमीटर का उपयोग करके आवश्यकतानुसार सिंचाई: टेंसियोमीटर का प्रयोग करके खेत में पानी की आवश्यकता का पता लगाया जाता है और जरूरत के आधार पर एक निर्धारित समय-सारिणी के अनुसार खेत में पानी दिया जाता है या उसकी सिंचाई की जाती है। चूंकि इस विधि से खेत में लंबे समय तक पानी नहीं रुकता इसलिए मीथेन उत्पन्न होने की संभावना कम होती है।

d. सत्र के बीच में जल निकासी : इस विधि के अंतर्गत फसल सत्र के बीच में जब चावल की फसल कोपलें निकलने से लेकर पुष्पगुच्छ बनने तक पानी की कमी के प्रति कम संवेदनशील होती है, तब खेत को सुखाया जाता है। इससे चावल की पैदावार पर कोई असर डाले बिना मीथेन के उत्सर्जन में कमी आती है। इस विधि में खेत को 7 से 15 दिनों तक पूरी तरह से सूखाकर फिर से जल-भर दिया जाता है।

2. **मीथेन उत्पादन को प्रबंधित करने के रासायनिक उपाय**

a. **राइजोस्फीयर में रीडॉक्स क्षमता को संतुलित करना :** किसी निश्चित क्षेत्र में मिट्टी और यहां तक कि पानी में किस तरह की जैव-रासायनिक प्रतिक्रियाएं हो रही हैं, इसका आकलन करने के लिये वैज्ञानिक 'रीडॉक्स पोटेंशियल' (redox potential) नाम के एक पैमाने का इस्तेमाल करते हैं। यह प्रतिक्रियाएं प्रणाली में उपलब्ध इलेक्ट्रॉनों पर निर्भर करती हैं जो उस वातावरण में यौगिकों के ऑक्सीकरण और उनमें कमी लाने में मददगार होती है। यह प्रतिक्रियाएं उस प्रणाली में पोषक तत्वों की उपलब्धता के नियमन के लिये भी जिम्मेदार होती हैं। जैसा कि अपेक्षा की जा

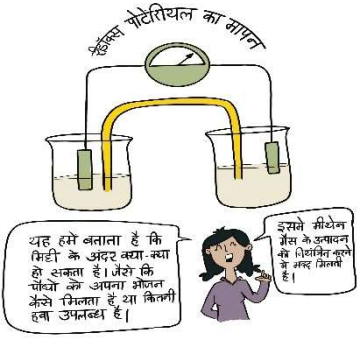

सकती है कि प्रणाली में ऑक्सीजन की उपस्थिति या अनुपस्थिति का 'रीडॉक्स क्षमता' पर गहरा प्रभाव पड़ता है और इस तरह से उस प्रणाली की सम्भावित जैव-रासायनिक प्रतिक्रियाओं पर भी ऐसा ही असर होता है। लंबे समय तक पानी जमा रहने से चावल की मिट्टी का रीडॉक्स पोटेंशियल कम हो जाता है (**+100** से **-300 mV** तक)। वहीं, दूसरी ओर अच्छी तरह हवादार और वायुजीवी मिट्टी में रेडॉक्स पोटेंशियल पॉजिटिव होता है (**+400** से **+600 mV** तक)।

b. **मिट्टी में सुधार करके मीथेन के उत्पादन को प्रबंधित करना** : किसान हमेशा किसी फसल सत्र की शुरुआत में मिट्टी को तैयार करते हैं। मलबा हटाने और पिछली फसल से बचे अपशिष्ट को साफ करने के अलावा मिट्टी को पलटकर उसमें ऐसे पदार्थ मिलाकर उसे नया बनाया जाता है जिससे उसकी पोषकता बढ़ती है। यहां कुछ सुधारों के बारे में बताया जा रहा है जिनमें खास तौर पर ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के सवाल पर ध्यान दिया गया है।

I. अमोनियम सल्फेट और फॉस्फोर-जिप्सम जैसे सल्फेट वाले उर्वरकों को मिलाना : मिट्टी में मौजूद मीथेनोजेनिक जीवाणु इन उर्वरकों से मिलने वाले सब्सट्रेट के लिए सल्फेट कम करने वाले जीवाणुओं से मुकाबला करते हैं। यह देखा गया है कि इससे आखिर में मीथेन का उत्पादन कम हो जाता है।

II. आयरन युक्त तलछट जैसे ऑक्सीडेंट मिलाना : ये मिट्टी का **pH (**क्षारीयता) और **Eh (**रीडॉक्स क्षमता) बढ़ाते हैं। इससे मीथेन का उत्पादन धीमा हो जाता है।

3. मीथेन उत्पादन का प्रबंधन करने के लिये सूक्ष्मजीव वैज्ञानिक उपाय

मीथेन को पचाने वाले जीवाणु मीथेनोट्रॉफ्स जैसे मिट्टी के माइक्रोब्स के सूक्ष्मजीवाणुओं के कल्चर को मिट्टी में मिलाने से मीथेन उत्पादन को नियंत्रित किया जा सकता है। मीथेनोट्रॉफ्स, मीथेनोजेनिक बैक्टीरिया से बनी मीथेन को चयापचित करके कार्बन डाइऑक्साइड बनाते हैं। यह एक बहुत हल्की ग्रीनहाउस गैस है। इससे चावल के खेतों से मीथेन का उत्सर्जन कम हो जाता है।

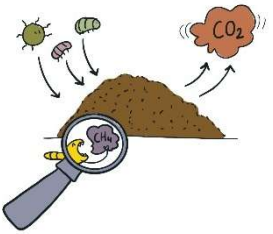

4. मीथेन उत्पादन और उसकी आवाजाही को प्रबंधित करने के लिए खास किस्मों का चुनाव

a. पानी की आवश्यकता के अनुरूप चावल की प्रजातियों का चयन : चावल की कुछ प्रजातियों को लगभग 180 दिनों तक जलमग्न रखने की जरूरत होती है। इन्हें 'लम्बी अवधि' वाले चावल के पौधे माना जाता है। ऐसी किस्मों की फसल को तैयार होने में लम्बा समय लगता है और इस दौरान मीथेन पैदा होकर वातावरण में पहुंच सकती है। चावल की एक ऐसी प्रजाति जिसमें उसे 100 दिनों तक ही पानी में डुबाये रखने की जरूरत होती है, उसे बोने से मीथेन के उत्पादन और उसके संचरण में बड़े स्तर पर कमी लायी जा सकती है।

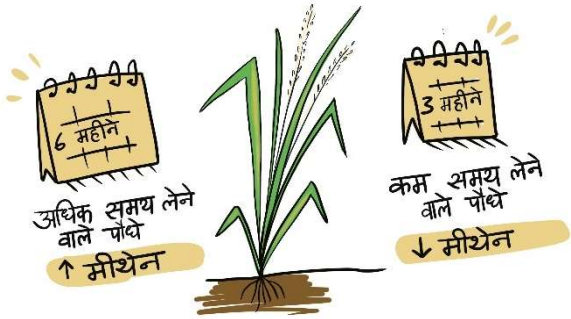

b. पादप आकृति विज्ञान के अनुरूप प्रजाति का चयन : पौधों का आकृति विज्ञान मीथेन की आवाजाही में योगदान करता है। पत्तियों पर स्टोमेटा का घनापन, तने की आसंधि (नोड्स) और अंतरआसंधि (इंटरनोड्स), जड़ की बनावट, जड़ से निकलने वाले तरल पदार्थ, तने की अंदरूनी बनावट यानी एरेनकाइमा, स्टेल (मूठ) और छाल के

आकार से यह निश्चित होता है कि मिट्टी में बनने वाली मीथेन कितनी तेजी से वायुमंडल में घुल सकती है। इसके अलावा कुछ ऐसी किस्में भी हैं जिनकी जड़ों की बनावट में ROL की विशिष्ट दर होती है जो राइज़ोस्फीयर में मीथेन ऑक्सीकरण को बढ़ाती हैं और मिट्टी से वायुमंडल में मीथेन के परिवहन को कम करती हैं। इन किस्मों को चुनने से वायुमंडल में पहुंचने वाली मीथेन की मात्रा में बहुत अंतर पड़ सकता है।

c. उच्च फसल सूचकांक (Harvest Index-HI) वाली किस्मों का चयन : इस सूचकांक से सूखे बायोमास में अनाज के अनुपात का पता लगाया जाता है। अधिक **HI** ज्यादा उत्पादकता दिखाता है। चूंकि सामान्यत: सारा सूखा बायोमास वापस मिट्टी में मिला दिया जाता है, इसलिए अधिक **HI** वाली किस्मों में ऑर्गेनिक पदार्थ का समावेश कम होता है, जो मीथेनोजेनिक बैक्टीरिया के लिए सब्सट्रेट (एक तरह की परत) है और इस तरह मीथेन का उत्पादन कम होता है।

5. चावल के भूसे/अपशिष्ट के सतत तरीके से प्रबंधन से भी मीथेन के उत्सर्जन में कमी लायी जा सकती है

किसान आम तौर पर फसल कटने के बाद उसके अवशेषों (पराली) को जला देते हैं, हटा देते हैं या फिर मिट्टी में मिला देते हैं। पराली जलाने से बहुत अधिक वायु प्रदूषण और ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन होता है। वहीं, भूसे को गीले स्थानों पर रखने से मीथेन गैस तेजी से बनती है। इसलिये पराली प्रबंधन के एकत्रण एवं पुनर्प्रयोग मॉडल (सर्कुलर मॉडल) जैसे कि पराली को इकट्ठा करने और उसे कम्पोस्टिंग, मशरूम की खेती, बायोचार (जैव चारकोल), जैवईंधन या जानवरों के चारे के लिए दोबारा प्रयोग करने को बढ़ावा देने से इस अपशिष्ट को मूल्यवान संसाधन में बदला जा सकता है। इससे उत्सर्जन कम होगा और आजीविका के नए अवसर बनेंगे।

6. **फसल विविधिकरण - चावल की खेती से हटकर ऐसी फसलें उगाना जिनमें रुके हुए पानी की आवश्यकता नहीं होती**

चावल की जगह दालें, तिलहन या सब्ज़ियां उगाने से सिंचाई के तरीके बदल जाते हैं। पानी नहीं रुकने से मिट्टी में हवा की आवाजाही होती है जिससे मीथेनोजेनिक जीवाणु से मीथेन का बनना रुक जाता है।

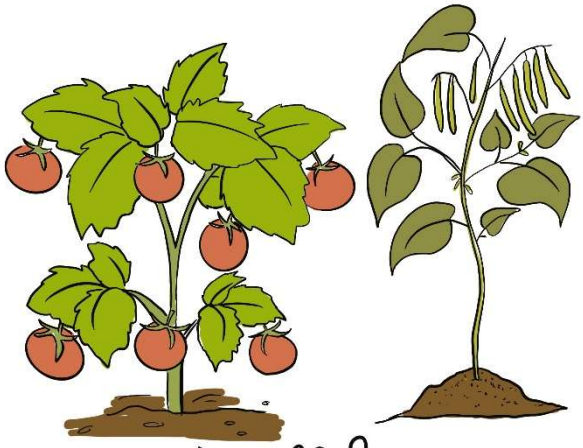

मीथेन उत्सर्जन के प्रबंधन के मुख्य कारक और प्रमुख बाधाएँ

क्र. सं.	श्रेणी	उपाय	मुख्य कारक	प्रमुख अवरोध
1	जल विज्ञान सम्बन्धी उपाय	खेत को बारी-बारी से गीला करना और सुखाना (AWD)	पानी, बिजली की बचत और ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी	नहर कमान में सिंचाई की पक्की व्यवस्था की कमी, निचले क्षेत्र की भूमि में जल निकासी का कम अवसर
		चावल का बीज सीधे तौर पर बोना (DSR)	मजदूरी, पानी की बचत, खेती की लागत में कमी, ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी	पर्याप्त यंत्रीकरण की कमी, खरपतवार की रोकथाम
		सत्र के बीच में जल निकासी	ग्रीनहाउस गैसों का कम उत्सर्जन	नहर कमान में सिंचाई की पक्की व्यवस्था की कमी, निचले क्षेत्र की भूमि में जल निकासी के कम अवसर
2	रासायनिक उपाय	अमोनियम सल्फेट जैसे सल्फेट वाले उर्वरक और फॉस्फर-जिप्सम जैसे मिट्टी सुधारक का इस्तेमाल करना	ग्रीनहाउस गैसों का कम उत्सर्जन	जागरूकता की कमी और अतिरिक्त लागत
		लौह तलछट जैसे ऑक्सीडेंट मिलाकर मिट्टी में सुधार करें	ग्रीनहाउस गैसों का कम उत्सर्जन	जागरूकता की कमी और अतिरिक्त लागत
3	सूक्ष्मजीव वैज्ञानिक उपाय	मीथेनोट्रोफ्स जैसे मिट्टी के माइक्रोब्स के मिश्रण को मिलाना	ग्रीनहाउस गैसों का कम उत्सर्जन	उत्पादन और खेत में उसे डालने में सामने आने वाली तकनीकी चुनौतियां
4	चावल की विशिष्ट किस्में	कम नाइट्रोजन की आवश्यकता और कम मीथेन उत्सर्जन वाली चावल की किस्म	खेती की लागत में कमी, ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी	कम नाइट्रोजन की आवश्यकता वाली और कम मीथेन छोड़ने वाली चावल की किस्मों पर सटीक शोध की कमी
5	फसल विविधीकरण	चावल को खेती योग्य अन्य फसलों के साथ विविधतापूर्ण बनाना	बेहतर उत्पादकता और ग्रीनहाउस गैसों का कम उत्सर्जन	बाजार से जुड़ाव और मूल्य श्रृंखला में कमी

जब ध्यान सिर्फ मीथेन पर ही नहीं बल्कि नेट सिंक दृष्टिकोण के साथ सभी ग्रीनहाउस गैसों पर हो

हमने यहां पर मीथेन के विषय पर विचार किया मगर यह खेतों की मिट्टी से निकलने वाली एकमात्र ग्रीनहाउस गैस नहीं है। कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) और नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) भी ऐसी ग्रीनहाउस गैसें हैं जिन पर ध्यान दिया जाना चाहिये। इसके अलावा, सभी ग्रीनहाउस गैसों का पर्यावरण पर एक जैसा असर नहीं होता। ग्रीनहाउस गैसों की क्षमता के बारे में हम इस नजरिये से सोचते हैं कि वे पर्यावरण में कितनी गर्मी बनाये रखती हैं, मगर 'ग्लोबल वार्मिंग पोटेंशियल' (GWP) अपने आप में कोई परिपूर्ण शब्द नहीं है। मापन को सरल बनाने के लिये कार्बन डाईऑक्साइड के ग्लोबल वार्मिंग पोटेंशियल का मान 1 लिया गया और बाकी प्रत्येक गैस का मापन 'कार्बन डाईऑक्साइड समतुल्य' के हिसाब से किया गया। ऐसे में CH_4 का GWP लगभग 27 होता है और N_2O का 273 होता है। इस तरह N_2O तीनों में सबसे अधिक क्षमता वाली ग्रीनहाउस गैस है।

चूंकि N_2O में ग्लोबल वार्मिंग की क्षमता बहुत अधिक है तो क्या हमारा ध्यान CH_4 के बजाय N_2O के उत्सर्जन को रोकने पर ज्यादा होना चाहिए?

इस सवाल का जवाब देने के लिए यह समझना आवश्यक है कि ये सभी ग्रीनहाउस गैसें किन हालात में बनती हैं। साथ ही प्रत्येक की बनने वाली मात्रा भी बहुत अलग होती है। हालांकि N_2O की ग्लोबल वार्मिंग क्षमता बहुत अधिक है मगर यह CH_4 की तुलना में बहुत कम मात्रा में बनती है। मिट्टी में प्रत्येक के बनने के लिए अनुकूल स्थितियां भी एक जैसी नहीं होती हैं।

किस प्रकार की मिट्टी का पर्यावरण CH_4 और N_2O पैदा करती है?

CH_4 उत्पादन एक अपचयी (reductive) प्रक्रिया है, इसलिये इसके लिए सबसे अच्छी स्थिति तब होती है जब प्रणाली एनारोबिक (anaerobic) हो, जैसे जलभराव या जलमग्न खेती के मामले में। रीडॉक्स स्तर जितना कम होगा मीथेन बनने की संभावना उतनी ही अधिक होगी (-150 mV या उससे कम)। दूसरी तरफ, N_2O का बनना ऑक्सीकरण और अपचयी दोनों ही तरह की प्रक्रिया है। इसका उत्सर्जन बहुत व्यापक होता है और यह सबसे अधिक तब होता है जब मिट्टी में हवा भरी होती है (0 mV और उससे अधिक)। इसलिए चावल की खेती के बारी-बारी से गीला करने और सुखाने के तरीके से

इसलिए एक संतुलन होना चाहिए। अर्थात चावल के खेत की मिट्टी से निकलने वाली ग्रीनहाउस गैस को प्रबंधित करने की रणनीति बनाते समय दोनों के बीच संतुलन बनाए रखना चाहिए, ताकि हम CH_4 उत्सर्जन को नियंत्रित करने की कोशिश के दौरान N_2O के उत्सर्जन को बढ़ावा न दें। ऐसी प्रबंधन रणनीति का इस्तेमाल जो मुख्य रूप से ऑक्सीकरण वाला माहौल बनाने पर केंद्रित हो, N_2O और CH_4 दोनों के उत्पादन को नियंत्रित करने में तुलनात्मक रूप से अधिक प्रभावकारी है।

N_2O बनने में मदद मिलती है। वहीं, लंबे समय तक पानी जमा रहने से कटौती की स्थितियां बनती हैं जो मुख्य रूप से मीथेन उत्पादन के लिए अनुकूल होती हैं।

नाइट्रस ऑक्साइड

नाइट्रस ऑक्साइड को प्रबंधित करने के तरीके

नाइट्रोजन किसी भी जीवंत तंत्र का एक महत्वपूर्ण घटक है और यह विभिन्न रासायनिक स्वरूपों के बीच लगातार बदलती रहती है। पौधे ऑक्सीजन या कार्बन डाइऑक्साइड की तरह नाइट्रोजन को उसके गैस रूप में हवा से सीधे सोख नहीं सकते। हालांकि, वे नाइट्रोजन वाले यौगिकों, जैसे अमोनियम और नाइट्रेट को अवशोषित कर सकते हैं। नाइट्रोजन-फिक्सिंग जीवाणु हवा में मौजूद नाइट्रोजन (N_2) को इस्तेमाल करने लायक अमोनिया (NH_3) में बदल देते हैं। अमोनिया मिट्टी में पानी के साथ अभिक्रिया करके अमोनियम (NH_4^+) बनाता है और ऑक्सीकरण पर नाइट्रेट (NO_3^{-1}) बनता है। चावल के पौधे के लिए अमोनियम (NH_4^+) सबसे अच्छा स्वरूप है।

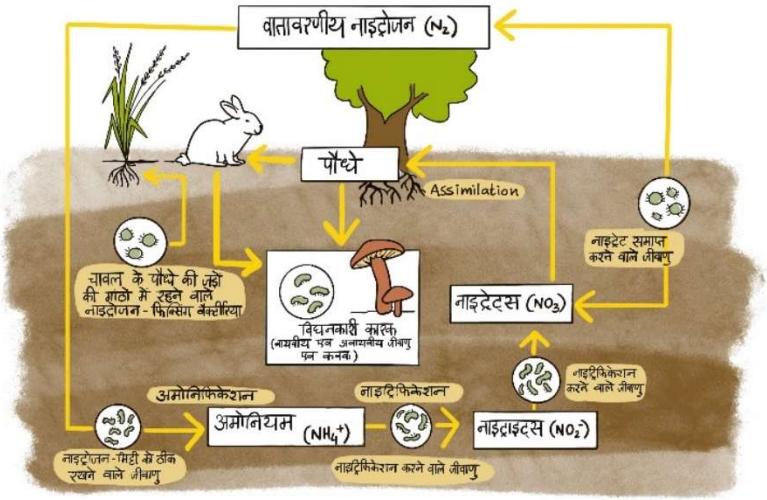

मिट्टी के अंदर दो प्रमुख प्रक्रियाएं होती हैं और ये दोनों ही विशिष्ट जीवाणु द्वारा की जाती हैं। नाइट्रेटीकरण एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से अमोनिया (NH_3) का नाइट्रेट (NO_3^-) बनाने के लिये क्रमबद्ध तरीके से ऑक्सीकरण होता है। इसके लिये ऑक्सीजन की उपस्थिति आवश्यक होती है। हालांकि यह साफ तौर पर समझा नहीं गया है, लेकिन अभिक्रिया के इस क्रम से नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) एक उप-उत्पाद के रूप में बनता है। दूसरी प्रक्रिया गैर-नाइट्रेटीकरण है जिसमें नाइट्रेट (NO_3^-)

एक के बाद एक कम होकर नाइट्रोजन गैस (N_2) बनती है। यह मुख्य रूप से तब होता है जब मिट्टी में ऑक्सीजन का स्तर कम होता है। यानी जब स्थिति एनारोबिक (anaerobic) होती हैं। गैर-नाइट्रेटीकरण खेती के लिए विशेष रूप से लाभदायक नहीं है क्योंकि इससे नाइट्रोजन की हानि होती है। साथ ही इसका एक उप-उत्पाद N_2O है।

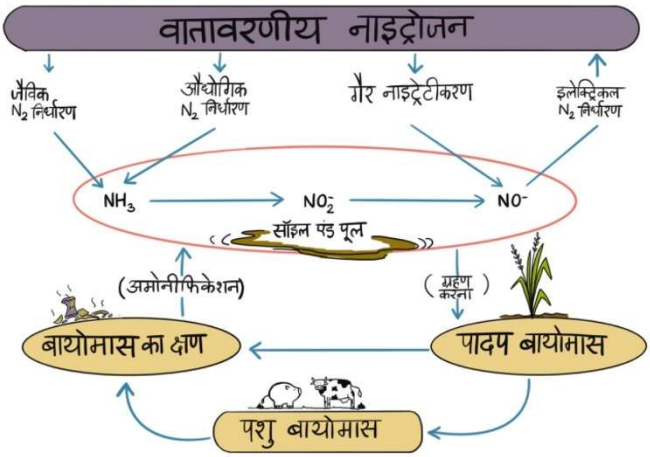

नाइट्रस ऑक्साइड एक ग्रीनहाउस गैस है जो ग्लोबल वार्मिंग प्रभाव के करीब 20 प्रतिशत भाग के लिये जिम्मेदार है। कार्बन डाईआक्साइड के मुकाबले इसकी ग्लोबल वार्मिंग क्षमता 298 गुना ज्यादा है और पिछले दो दशकों के दौरान इसका औसत वातावरणीय संकेंद्रण तेजी से बढ़ा है। समुद्र और नदियां नाइट्रिफिकेशन के जरिए N_2O के मुख्य उत्पादक हैं। खेती की मिट्टी में उर्वरक का प्रयोग, जीवाश्म ईंधन को जलाना, मानव मल और अपशिष्ट जैसी मानव की गतिविधियां N_2O के उत्सर्जन में कम से कम 30 प्रतिशत का योगदान देती हैं।

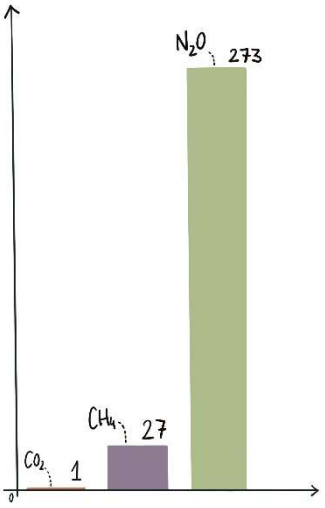

N_2O उत्सर्जन पर प्रभाव डालने वाले जैविक, रासायनिक और भौतिक कारकों की विविधतापूर्ण किस्मों की वजह से इसका नियमन करना आसान

नहीं है। मिट्टी में एक बार उत्पन्न होने के बाद N_2O बुलबुलों के माध्यम से सीधे तौर पर मिट्टी से उत्सर्जित होती है। मीथेन के विपरीत, इसके लिये जरूरी नहीं है कि चावल का पौधा मिट्टी से बाहर आने पर यह वातावरण में पहुंचे। चावल के खेत से होने वाला N_2O उत्सर्जन किसी भी अन्य खेत जैसे कि गेहूं या दालों अथवा अन्य फसलों के खेतों से होने वाले इसके उत्सर्जन की ही तरह होता है। मगर फिर भी चावल के खेत N_2O का बहुत अधिक योगदान करते हैं क्योंकि वे नाइट्रोजन युक्त उर्वरक[5] (कुछ रिपोर्टों के मुताबिक सालाना करीब 9 मिलियन टन) के सबसे बड़े उपभोक्ता हैं। इसका कारण यह है कि पौधे उर्वरक से नाइट्रोजन की ठीक से प्रतिपूर्ति नहीं कर पाते (30-40% या उससे भी कम)।

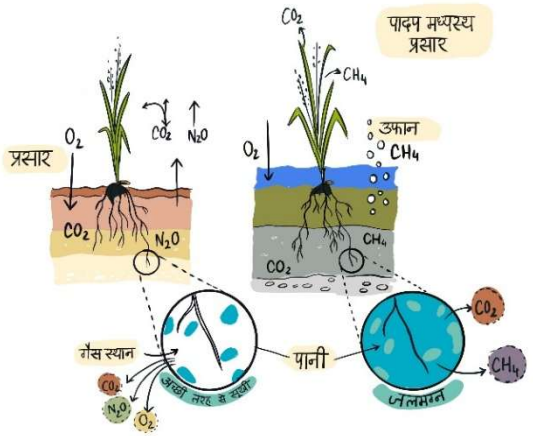

नाइट्रोजन उर्वरक के नियमन से N_2O के उत्पादन और उत्सर्जन को कम करने में सहायता मिलती है

नाइट्रोजन को उसे समायोजित करने वाले कई सूक्ष्मजीजियों द्वारा मिट्टी में मिलाया जाता है लेकिन फिर भी खेती वाली मिट्टी में इसे हमेशा अन्य तत्वों से अनुपूरित करने की आवश्यकता होती है। यह यूरिया, सल्फेट और अमोनियम नाइट्रेट जैसे नाइट्रोजन आधारित उर्वरकों इत्यादि के प्रयोग से किया जाता है। इन उर्वरकों से मिला अधिक नाइट्रोजन तीन विशेष तरीकों से खत्म हो जाता है। पहला, डीनाइट्रिफिकेशन से, जिससे नाइट्रोजन गैस निकलती है। दूसरा, अमोनिया का निकलना और तीसरा, रिसाव के जरिये नाइट्रेट के नुकसान के माध्यम से।

[5] https://www.sciencedirect.com/science/article/abs/pii/S0167880922002389

हम मुख्य रूप से डीनाइट्रीफिकेशन के माध्यम से नाइट्रोजन की हानि में रुचि रखते हैं क्योंकि इससे नाइट्रस ऑक्साइड बनता है।

संतुलित रूप से खाद डालना या मांग एवं आपूर्ति के बीच तालमेल बनाकर उर्वरक डालना सबसे भरोसेमंद तरीका साबित हुआ है। यह तरीका है फसल के विकास के दौरान एक खास समय पर पौधे की ज़रूरत के हिसाब से सही तरीके से उर्वरकों के सबसे उपयुक्त संयोजन को डालने का। सिर्फ मांग होने पर ही खाद डालने से पोषक तत्वों की बर्बादी कम हो सकती है और हवा में N_2O का घुलना भी कम हो सकता है।

खाद का संतुलित प्रयोग : इसके लिए मिट्टी की किस्म और फसल के प्रकार की जानकारी होनी चाहिये ताकि अलग-अलग खनिजों और लवणों की आवश्यकता को समझा जा सके। साथ ही फसल की विकास दर की भी समझ होनी चाहिये ताकि यह पता चल सके कि खाद कब डालनी है। उर्वरक भी अलग-अलग तरह के होते हैं। घुलनशील उर्वरकों को अक्सर बार-बार डालना पड़ता है जबकि दानेदार उर्वरक अक्सर धीरे-धीरे मिट्टी में घुलते हैं और कुछ हफ्तों में एक बार डाले जाते हैं। उर्वरक के असर को उसके डालने का तरीका भी निर्धारित करता है। कुछ तरीके निम्नलिखित हैं :

- छिड़काव एक ऐसा तरीका है जो सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाता है। इसमें उर्वरक को हाथ से या किसी तरह की मशीन का प्रयोग करके खेत में एक जैसा फैलाया जाता है। क्योंकि यह अतिस्थानिक छिड़काव नहीं होता इसलिए इस तरीके में अक्सर मिट्टी के पोषक तत्वों में बदलाव को ध्यान में रखे बिना उर्वरक डाला जाता है और इससे ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ता है। साथ ही इससे खरपतवार भी बढ़ सकती है।

- द्रव रूपी उर्वरक को सीधे पत्तियों पर छिड़का जाए: यह पौधों को एक जैसा पोषण देने का अच्छा तरीका है। विशेष रूप से तब जब नमी की कमी या पौधों की जड़ों में सड़न की वजह से मिट्टी में खाद डालना सम्भव न हो। अगर पत्तियां उर्वरक को ठीक से सोख न पाएं और पौधे की जरूरत पूरी न कर पाएं तो यह तरीका बेअसर हो सकता है। अगर संकेंद्रण को सही तरीके से समायोजित नहीं किया गया तो इससे पत्तियों को नुकसान भी हो सकता है।
- उर्वरक नियोजन में किसी खास जगह पर थोड़ी मात्रा में उर्वरक डाला जाता है। इसका प्रभाव तब होता है जब मिट्टी सूखी हो। उर्वरक को मिट्टी में गहराई तक राइजोस्फीयर के पास डाला जा सकता है जहां जड़ें इसे सीधे तौर पर ग्रहण कर सकती हैं। इस तरीके से पोषक तत्वों का नुकसान और खरपतवार का विकास कम होता है।
- फर्टिगेशन सिंचाई के जरिये उर्वरक डालने का एक तरीका: यह ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर या फसल की कतारों के बीच बनी नाली से पानी देकर किया जा सकता है। इस तरीके को प्रयोग करने के लिए उर्वरक का पानी में घुलनशील होना जरूरी है। कभी-कभी कहीं पर जमाव होने से पूरी प्रणाली अवरुद्ध हो सकती है, इसलिए सिंचाई व्यवस्था का लगातार रखरखाव करने की जरूरत होती है। साथ ही सिंचाई के लिए प्रयोग होने वाले पानी का ध्यान से प्रबंध करने की आवश्यकता होती है ताकि खाद की मात्रा अधिक न हो।

निचली, मध्यम और ऊंचे स्थानों वाली जमीनों में वर्षा पर आधारित चावल की खेती: तीन स्तरों का मामला

जहां तक जल प्रबंधन का मामला है तो चावल के सिंचित खेत AWD को आसानी से अंगीकार कर सकते हैं। सिंचाई और जलनिकासी दोनों में ही पानी को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है। हालांकि भारत की करीब 50% कृषि भूमि सिंचाई के लिये वर्षाजल पर निर्भर करती है और वह पूरी तरह से बारिश के पानी पर टिकी है। अन्य प्राकृतिक भूमि क्षेत्रों की तरह भारत की ज्यादातर कृषि भूमि मैदानी क्षेत्रों में स्थित है। इसमें ऊबड़-खाबड़ इलाके, टीले, ढलानें और घाटियां भी शामिल हैं।

प्रबंधन में आसानी के लिये वर्षा पर निर्भर खेतों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है — ऊंचे या ऊपर के क्षेत्र, मध्यम ऊंचाई के क्षेत्र और निचले क्षेत्र। यह ध्यान रखना जरूरी है कि यह श्रेणी पूरी तरह से अलग-अलग खेतों की तुलनात्मक ऊंचाई/टोपोग्राफी पर आधारित है न कि क्षेत्र की पूरी ऊंचाई पर। तीनों श्रेणियां अक्सर एक ही इलाके में पायी जाती हैं और हर स्तर पर चावल की खेती में सिंचाई के लिए अलग-अलग योजना या प्रबंधन की रणनीति की ज़रूरत होती है। यह रणनीति मौसमी बारिश की मात्रा (जैसे भारी मानसून या गर्म और सूखी गर्मियां) और पानी की सामान्य उपलब्धता पर निर्भर करती है। तीनों स्तरों के खेत पानी और मिट्टी के साथ अलग-अलग तरीके से प्रतिक्रिया करते हैं इसलिए ग्रीनहाउस गैसों के उत्पादन और उत्सर्जन की उनकी क्षमता भी अलग-अलग होती है।

चावल की खेती के मौसम पर पड़ने वाले असर को कम करने के लिए जल प्रबंधन की रणनीति भी भारत में बारिश पर निर्भर खेती और सिंचाई वाली खेती में अलग-अलग होती है। भारत में मॉनसून पर भरोसा नहीं किया जा सकता। साथ ही बारिश के मौसम में अलग-अलग अंतराल पर बारिश नदारद रहती हैं। बारिश पर निर्भर, अधिकतर ऐसे क्षेत्रों में जो ऊपर या बीच की जमीन पर हैं, अनायास ही AWD की स्थिति बन जाती है। हालांकि, निचले क्षेत्रों में ज्यादा मॉनसूनी बारिश होने पर खेतों में पानी भर सकता है और कई दिनों तक यही स्थिति बनी रह सकती है। ऐसे में वे जलमग्न खेती से जुड़ी प्रबंधन रणनीति के लायक हो जाते हैं।

निचले क्षेत्रों में स्थित भूमि का प्रबंधन : निचले क्षेत्र चूंकि अक्सर ढलानों से घिरे होते हैं इसलिये उनमें जलभराव की सम्भावना होती है। चाहे वह बारिश का पानी हो या फिर किसी अन्य तरीके की सिंचाई का जल हो। चावल की जलमग्न खेती ऐसे क्षेत्रों में मानक बन जाती है क्योंकि ऐसी भूमि लम्बी अवधियों तक पानी में डूबी रहती हैं। ऐसे मामलों में मीथेन और N_2O उत्सर्जन को नियंत्रित करने की कोशिश करने के बजाय मिट्टी में ज़्यादा बायोमास डालकर कार्बन पृथक्करण को बढ़ावा देने के तरीके ढूंढना अधिक व्यावहारिक है। ऐसा, क) कम समय में उगने वाली चावल की किस्मों को चुनकर और ख) उच्च फसल सूचकांक (HI) वाली किस्मों को लगाकर किया जा सकता है। इन दोनों मामलों में

मिट्टी का ऑर्गेनिक कार्बन (SOC) बढ़ जाता है क्योंकि पौधों का ज़्यादातर बायोमास फसल कटान के बाद मिट्टी में वापस चला जाता है। एनारोबिक (anaerobic) दक्ष अपघटक नहीं होते इसलिए मिट्टी में मिला बायोमास कार्बन अधिक समय तक वहीं रहता है (बढ़ा हुआ पृथक्करण)।

ऊंची और मध्यम ऊंचाई वाली भूमि का प्रबंधन : इन क्षेत्रों में फसल सत्र के दौरान बारी बारी से बारिश और सूखे की अवधि आने की वजह से मीथेन उत्पादन प्राकृतिक रूप से नियंत्रित रहता है। N_2O जैसी अन्य ग्रीनहाउस गैस (GHG) का उत्सर्जन उर्वरकों के सटीक उपयोग के माध्यम से राइजोस्फीयर को ऑक्सीडेटिव स्तर पर बनाए रखकर नियंत्रित किया जा सकता है। उर्वरकों की गुणवत्ता और उनकी मात्रा की आवश्यकता का पता लगाने के लिए मिट्टी की जांच की आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है। यह मिट्टी की रीडॉक्स क्षमता को संतुलित करने में मदद करती है और CH_4 के उत्सर्जन में कमी लाने के प्रयास के दौरान N_2O के उत्सर्जन में अनैच्छिक रूप से होने वाली वृद्धि को रोकती हैं।

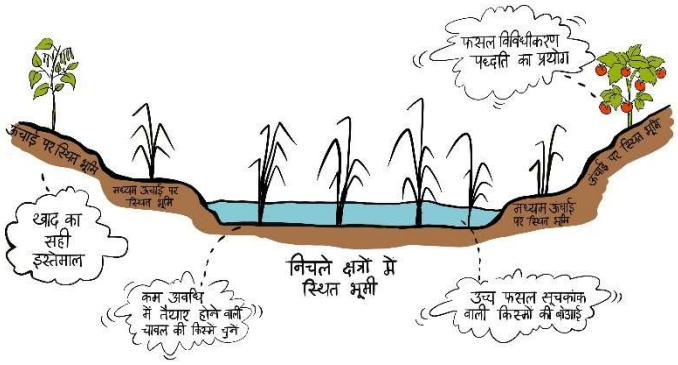

ऊंचाई पर स्थित जमीन का प्रबंध : 'फसल विविधीकरण', ऊंचाई वाले क्षेत्रों में चावल की खेती के दौरान ग्रीन हाउस गैसों (GHG) के उत्पादन और उनके उत्सर्जन को रोकने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक आदर्श उपाय है। किसानों को सलाह दी जाती है कि वह चावल की खेती करने के बजाय सब्जियों या तिलहन की फसलें उगाना शुरू करें जिनके लिए खेतों में पानी भरने की जरूरत नहीं होती। यहां एक उदाहरण है: झारखंड, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा के कुछ भागों में ऊंचाई वाले क्षेत्रों में किसान परंपरागत रूप से चावल उगाते हैं। लेकिन हाल के वर्षों में उन्होंने दाल और औद्यानिकी फसलें उगाकर कृषि विविधीकरण को सफलतापूर्वक निष्पादित किया है। इससे न सिर्फ ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन की रोकथाम हुई है, बल्कि किसानों को रबी और खरीफ फसल सत्रों में दो फसलें भी प्राप्त हुई हैं।

किसानों की चिंताएं और सम्भावित समाधान – अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्न (FAQs)

1. **क्या किसानों को चावल की खेती को और सतत बनाने में सहायक तकनीकों के बारे में कम ज्ञान और कम जानकारी है? अगर हां, तो इसका समाधान कैसे किया जा सकता है? उर्वरक नियोजन में किसी खास जगह पर थोड़ी मात्रा में उर्वरक डाला जाता है।**

   हो सकता है कि किसान इस बात के विस्तृत विज्ञान के बारे में जागरूक न हों कि ग्रीनहाउस गैसें कैसे उत्पन्न होती हैं। यह भी सम्भव है कि वे यह न समझ पाते हों कि ग्रीनहाउस गैसों की रोकथाम करने से सम्पूर्ण मानवता को फायदा होगा। मगर वे उन व्यावहारिक मामलों में रुचि ले सकते हैं जो उनके दैनिक जीवन पर तुरंत प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के तौर पर उन्हें पता हो कि अगर फसल के मौसम में पानी की पर्याप्त और भरोसेमंद आपूर्ति होगी तो वे पानी के सालाना इस्तेमाल को कम कर सकते हैं। या अगर उन्हें चावल के अलावा दूसरे कृषि उत्पादों के लिए भी बाजार मिल जाए तो वे और भी किस्मों की फसलें उगा सकते हैं।

   इसके अलावा, चावल की खेती के मौसम पर पड़ने वाले असर के बारे में किसानों को जागरूक करना और उन्हें उनके खेती के व्यवसाय पर अच्छा असर डालने वाले विकल्प देना भी निश्चित रूप से एक अच्छा समाधान है।

2. **किसानों को जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों से लड़ने को तैयार करने के लिये और कौन से कदम उठाये जा सकते हैं?**

   किसानों में जागरूकता बढ़ाये जाने के साथ-साथ जलवायु संरक्षण के लिये प्रभावशाली कदम उठाने पर उन्हें प्रोत्साहित करने की भी जरूरत है। उनके क्षमता निर्माण में निवेश करना, नये ज्ञान और प्रौद्योगिकियों के बारे में उनकी समझ और जागरूकता बढ़ाना अत्यंत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त भारत के कृषि क्षेत्र में व्यापक बदलाव करने से पहले अनेक सामाजिक और आर्थिक सुधार करने जरूरी हैं।

3. **क्या इन प्रौद्योगिकियों को लागू करना किसानों के लिये आर्थिक रूप से सम्भव है?**

   यह काफी हद तक संभव है लेकिन प्रौद्योगिकी और उपकरणों के मूल्य से अधिक चिंता इस बात की है कि किसानों तक जानकारी नहीं पहुंच पा रही है और किसी भी नए कृषि उत्पाद को लेकर बाजार का कोई भरोसा नहीं है।

4. **विभिन्न पद्धतियों के प्रयोग से होने वाली उपज में क्या अंतर है?**

जलमग्न कृषि, AWD और सीधे तौर पर बीज बोने (DSR) की पद्धतियों से उत्पन्न चावल की उपज में कोई खास अंतर नहीं होता। हालांकि इनमें से हर तरीके में लगने वाली चीजें व्यापक रूप से भिन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, उनमें से कुछ के लिए कई छोटी 'घटक प्रौद्योगिकियों' के संयोजन की आवश्यकता हो सकती है, जो किसानों के लिए जटिल साबित हो सकती है।

5. किसान चावल की खेती के दौरान AWD पद्धति अपनाने के लिये जलमग्न कृषि पद्धति को छोड़ने के प्रति अनिच्छुक क्यों हैं? आखिरकार, AWD का ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन और जलवायु परिवर्तन पर पड़ने वाला सकारात्मक प्रभाव साफतौर पर नजर आता है

इसके अनेक कारण हैं। इसकी जड़ें किसानों के आर्थिक-सामाजिक रवैये में बसती हैं। कृषि क्षेत्र में काम करने के वर्षों के अपने अनुभव के आधार पर उन्होंने सरकारी सहयोग के बारे में पूछे जाने पर आवश्यकता से अधिक सतर्कता बरतना सीखा है। इसके अलावा नई और अनजान टेक्नोलॉजी और खेत प्रबंधन रणनीति पर अविश्वास और अरुचि होना भी एक कारक है। ऐसे में, ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के वैश्विक असर के बारे में जानने से उनका दृष्टिकोण बदलेगा या नहीं, इस बात को लेकर संदेह है।

- **खरपतवार नियंत्रण :** किसान चावल की जलमग्न खेती क्यों पसंद करते हैं, इसका पहला और सटीक कारण यह है कि खेत में अधिक देर तक पानी भरा रहने से उनमें खरपतवार नहीं उग पाते। यह खरपतवार नियंत्रण का एक प्रभावशाली तरीका है। दूसरी ओर, AWD में खेत के सूखा रहने के दौरान सभी तरह के बीजों को उगने का मौका मिलता है जिससे खरपतवार फैलते हैं। साथ ही, AWD में खाद के प्रयोग और उसे डालने के समय के बारे में अधिक सावधानी से निर्णय लेने पड़ते हैं जो एक महंगा प्रस्ताव है।

- **पानी की उपलब्धता का भरोसा नहीं होना :** दूसरा कारण यह है कि भारतीय किसानों के पास उपलब्ध सिंचाई के साधन विश्वसनीय नहीं हैं। भारत के कई हिस्सों में पानी की कमी है। चूंकि किसान हर समय पानी की उपलब्धता पर निर्भर नहीं रह सकते, इसलिए वे जब भी हो सके अपने खेतों को पानी से भर देना पसंद करते हैं और उम्मीद करते हैं कि सब अच्छा रहेगा। पानी की कमी का मतलब यह भी है कि इसे कई खेतों में बांटना पड़ता है और किसानों में इसके लिए आपस में खींच तान भी हो सकती है। ऐसे में जब पानी उपलब्ध होता है तो इसका पूरा इस्तेमाल किया जाता है।

- **नि:शुल्क मगर सीमित संसाधन :** तीसरा कारण यह है कि भारत में पानी की आपूर्ति भले ही भरोसेमंद न हो लेकिन यह किसानों के लिए नि:शुल्क है। पानी और बिजली न केवल मुफ्त हैं बल्कि इनका अधिक प्रयोग करने पर कोई दंड भी नहीं है। चूंकि इनके अधिक इस्तेमाल पर कोई धन खर्च नहीं होता इसलिए इन चीजों का गलत इस्तेमाल करने की बुरी आदत पड़ गयी है। किसान अक्सर यह सोचकर आवश्यकता से अधिक पानी इस्तेमाल करते हैं कि इससे भविष्य में कमी पूरी हो जाएगी।

6. उर्वरकों का 'सटीक उपयोग' क्या है? इसका इस्तेमाल करना कितना जटिल है?

भारत में अधिकतर किसान इन बातों को जानने के लिये कृषि विभाग की सलाह पर निर्भर करते हैं कि किसी खास फसल के लिए किस तरह का उर्वरक इस्तेमाल करना चाहिए, उसे कितनी मात्रा में डालना चाहिए और फसल बढ़ने के दौरान उर्वरक डालने का सही समय क्या है। उर्वरकों के इस 'सटीक इस्तेमाल' के लिए मिट्टी की जांच, फसल के विकास के चरण के आधार पर मात्रा का आकलन, सही तरीकों और उपकरणों का उपयोग कर उनके सटीक प्रयोग की आवश्यकता

होती है। इससे न केवल पैदावार बेहतर होती है बल्कि N_2O का उत्सर्जन भी बहुत कम हो जाता है।

सामान्यत: कृषि विभाग मिट्टी की गुणवत्ता के आधार पर सुझाव देता है। मगर भूमि के एक छोटे से भाग में भी मिट्टी की गुणवत्ता एक जैसी नहीं होती और ज़मीन पर कई अलग-अलग जगहों से नमूनों की जांच करने की जरूरत होती है। इससे मिट्टी की जांच करना बहुत बड़ा काम हो जाता है। भारत में अभी इसके लिए आवश्यक मूलभूत सुविधाएं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है। इसलिए सुझाव पूरे ज़िले या किसी राज्य की मिट्टी की औसत गुणवत्ता के आधार पर दिये जाते हैं। चूंकि चाहे खेत की मिट्टी की गुणवत्ता और उपजाऊपन कुछ भी हो, सभी किसानों को एक जैसी सलाह दी जाती है, इसीलिए अक्सर वांछित परिणाम नहीं मिलते।

जब इतने बड़े स्तर पर विस्तृत आकलन करना सम्भव हो जाएगा तो हर किसान को सही सलाह देना भी मुमकिन हो जाएगा।

7. किसान चावल की खेती छोड़कर अन्य विविधीकृत फसलें उगाने को लेकर आखिर क्यों अनिच्छुक हैं?

किसान अपनी फसल का एक हिस्सा अपने खुद के इस्तेमाल के लिए रखते हैं, दूसरा हिस्सा वस्तु विनिमय के लिये अनाज के तौर पर और बाकी भाग को खुले बाजार में बेच देते हैं। उपज का कुछ हिस्सा फालतू बच जाता है और वह बिकता नहीं है। भारत में, धान और गेहूं जैसी कुछ फसलों का अतिरिक्त हिस्सा सरकार खरीद लेती है। भारतीय खाद्य निगम (फूड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया) जैसी सरकारी एजेंसियां हर विपणन सत्र की शुरुआत में कुछ फसलों के उत्पादन का विस्तृत अनुमान लगाती हैं और फसल की स्वीकार योग्य औसत गुणवत्ता के आधार पर न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करके किसानों से उनकी अतिरिक्त फसल खरीद लेती हैं। कुछ ही फसलें हैं जिन्हें सरकार से यह 'खरीद का आश्वासन' मिलता है।

हाल ही में सरकार ने खरीद बीमा कार्यक्रम में कुछ और फसलें शामिल की हैं लेकिन ये प्रोत्साहन इतने पर्याप्त नहीं हैं कि किसान चावल की खेती से हटकर दूसरी फसलें उगाना शुरू कर दें। इसलिए जब सरकार दूसरे प्रोत्साहन देती भी है तो अपनी उपज के लिए पक्का बाजार मिलने की अनिश्चितता ही किसानों को दूसरी फसलें उगाने से रोकती है।

सरकार की ओर से पक्की खरीद से किसान अपने को सुरक्षित महसूस करते हैं। यहां एक उदाहरण है: हरियाणा में किसानों को चावल की जगह दूसरी फसलें उगाने के लिए प्रोत्साहन दिया गया। राज्य सरकार ने 'मेरा पानी मेरी विरासत' योजना के अंतर्गत मक्का, कपास, खरीफ सत्र में उगायी जाने वाली दालें (अरहर, मूंग, मोठ, उड़द, सोयाबीन और ग्वार), खरीफ सत्र में पैदा होने वाले तिलहन (मूंगफली, अरंडी और तिल), चारे वाली फसलें और बागवानी वाली सब्जियां (खरीफ सत्र में उगाये जाने वाले प्याज सहित) जैसी दूसरी फसलें उगाने के लिए किसानों को प्रति एकड़ 7000 रुपये देने का वादा किया था। फिर भी, बहुत कम किसान दूसरी फसलें उगाने को तैयार हुए क्योंकि इस बात की कोई गारंटी नहीं थी कि वे फसलें बिक जाएंगी। दूसरी तरफ चूंकि पानी मुफ्त में मिलता है इसलिए वे चावल उगा सकते थे जिसके लिए खरीद का पक्का प्रबंध था। यह किसानों के लिए एक आसान विकल्प था।

किसान समझते हैं कि पानी का इस्तेमाल कम करने के लिए चावल की खेती को छोड़ना बेहतर विकल्प हो सकता है क्योंकि पंजाब और हरियाणा के कुछ भागों में पानी की कमी है। मगर फिर भी यह ऐसी समस्या नहीं है जिसका कोई वैज्ञानिक या तकनीकी समाधान हो। इसके लिए एक सामाजिक, आर्थिक और नीतिगत समाधान की जरूरत है।

8. क्या किसानों की चिंताएं दूर हो सकती हैं? ज्यादा सतत तरीके अपनाने में आने वाली बाधाओं को पार करने में कौन सी चीज सहायक हो सकती है?

सभी न सही, मगर इनमें से कुछ चिंताओं का समाधान किया जा सकता है। कुछ कदम उठाये जा सकते हैं, जो इस प्रकार हैं :

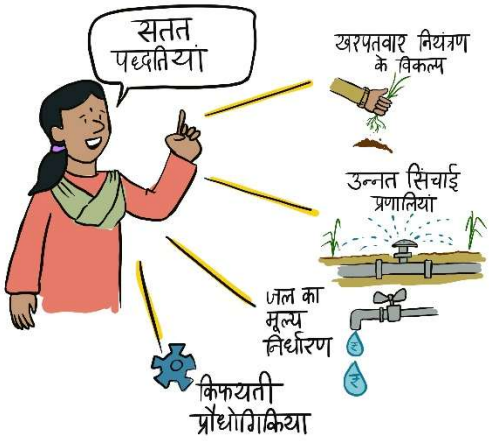

- खरपतवार प्रबंधन के बेहतर तरीके बताये जाएं ताकि किसान लम्बे समय तक जलजमाव का इस्तेमाल न करें।
- पानी की भरोसेमंद और समयबद्ध आपूर्ति सुनिश्चित की जाए ताकि किसान जलमग्न खेती न करने पर भी अपने को सुरक्षित महसूस कर सकें।
- पानी के लिए शुल्क लिया जाए। इससे चावल उगाने वाले किसान पानी जैसी बहुमूल्य चीज़ का सही मात्रा में इस्तेमाल करने के लिए मजबूर होंगे। इससे पानी कम खर्च होगा और ग्रीनहाउस गैसों का उत्पादन भी काफी कम होगा।
- आधुनिक सटीक प्रबंधन प्रौद्योगिकियों को और किफायती बनाया जाए। यह खेती करने वाले समुदायों के सभी स्तरों तक पहुंचे जिससे उनमें जलमग्न खेती के बजाय AWD की ओर जाने की इच्छा पैदा होगी।

भारत में चावल की खेती का भविष्य

मृदा जांच आधारित संस्तुतियां देने की व्यवस्था तैयार करना

किसी भी मिट्टी की गुणवत्ता उसमें मौजूद खनिजों, आर्गेनिक तत्व और पानी की मात्रा पर निर्भर करती है। जब भूमि के एक टुकड़े को खेती के लिये तैयार किया जाता है तो उसमें पोषक तत्व भरने, जोताई करके उसे हवादार बनाने, खरपतवार हटाने और मिट्टी की गुणवत्ता तथा उसमें बोई जाने वाली फसल की आवश्यकता के हिसाब से खाद डालने की जरूरत होती है। जमीन का हर टुकड़ा अलग होता है। जो मिट्टी लंबे समय तक बिना किसी उपयोग के पड़ी रहती है उसकी आवश्यकताएं उस मिट्टी से अलग होती है जिस मिट्टी पर नियमित रूप से खेती की जाती है।

मिट्टी को किस तरह के उपचार की जरूरत है, यह तय करने से पहले मिट्टी की इन सभी विशेषताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए। उर्वरक डालने का तरीका बताने से पहले मिट्टी का परीक्षण करना किसान की मदद करने का सबसे प्रभावशाली तरीका है। या तो मिट्टी टेस्टिंग लैब को सुलभ और सस्ता बनाया जाए या फिर मृदा परीक्षण किट बनाये जायें और किसानों को उनका सही इस्तेमाल करने का प्रशिक्षण दिया जाये। ये कुछ ऐसे तरीके हैं जिनसे वे अपने खेत के बारे में खुद ही निर्णय ले सकेंगे।

चावल की खेती के जलवायु पर पड़ने वाले प्रभावों को कम करने के लिये भूगोल आधारित संस्तुतियां उपलब्ध कराना

रूपरेखा मानचित्र का प्रयोग ऊंचाई वाले, मध्यम ऊंचाई वाले और निचले इलाकों में वर्षाजल से भरे और सिंचित इलाकों को श्रेणीबद्ध करने के लिए किया जा सकता है। इसे 'जोनेशन' कहते हैं। ऐसा मानचित्र किसानों को उनकी ज़मीन का जोन के हिसाब से प्रबंधन करने के बारे में असरदार मार्गदर्शन करने में मदद करेगा। उदाहरण के लिए- निचले क्षेत्रों में खेती करने वाले किसानों को ग्रीनहाउस गैसों (GHG) के उत्सर्जन को नियंत्रित करने का प्रयास करने के बजाय कार्बन पृथक्करण को बढ़ावा देने वाली तकनीक अपनाने की सलाह दी जा सकती है या मध्यम ऊंचाई वाले भूभागों में खेती करने वाले किसानों को ऐसे तरीके बताए जा सकते हैं जिनसे AWD को ध्यान से लागू किया जा सके और ऊपर के इलाकों के किसानों को फसलों में अलग-अलग तरह के बदलाव करने पर विचार करने की सलाह दी जा सकती है।

प्रोत्साहन (कार्बन कोष, कार्बन वित्तपोषण) और अर्थदंड की एक व्यवस्था बनायी जाए ताकि ऐसी कार्रवाई को बढ़ावा मिले जिसका फायदा वैश्विक स्तर पर हो।

क्या किसानों को सिर्फ सिफारिशें बताना ही पर्याप्त होगा? सिर्फ एक वैज्ञानिक या सरकार के कहने पर खेती के अपने परम्परागत तौर-तरीकों को बदलना उनके लिये बहुत खर्चीला काम हो सकता है। मगर हम एक किसान को ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन, ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन की गम्भीर और चिंतनीय सच्चाई के बारे में कैसे विश्वास दिला सकते हैं? हम उन्हें कैसे विश्वास दिलायें कि यह न सिर्फ दुनिया को, बल्कि खुद उन्हें भी प्रभावित करने जा रहा है?

हमारे वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों का जमा होना जैसे-जैसे धरती पर जीवन के लिए खतरा बनता जा रहा है, वैसे-वैसे दुनिया के अधिकतर देशों ने इस पर ध्यान देना शुरू कर दिया है। कई उद्योग प्रधान देशों ने अपने यहां ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन (कार्बन फुटप्रिंट) कम करने के लिए तत्परतापूर्ण प्रयास करने का वादा किया है। भारत जैसे देशों में खेती राज्य का विषय है। राज्य सरकारें सतत खेती के उपाय करने और बारिश पर निर्भर क्षेत्र के प्रबंधन की दिशा में कदम उठा रही हैं। इस संदर्भ में किसानों को आर्थिक लाभ पहुंचाने पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

भारत के अनेक राज्य ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन कम करने के लिए स्वच्छ ऊर्जा परियोजनाओं को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से नए विचारों का इस्तेमाल कर निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के बीच परस्पर लाभ वाले सहयोग को बढ़ावा दे रहे हैं। मध्य प्रदेश सरकार ऐसे ही कुछ 'कार्बन प्रोजेक्ट' शुरू कर रही है। इनमें जंगल, ज़मीन और खेती (FLAG) के क्षेत्र से जुड़े उद्योगों, विशेषकर वे उद्योग जो राज्य की प्राकृतिक सम्पदा का प्रयोग करते हैं, के साथ-साथ उन किसानों या जमीन के मालिकों के बीच

सहयोग बनाया जाता है जो अपनी ज़मीन का कुछ हिस्सा सतत और पुनरुत्पादक खेती के लिए देने को तैयार हैं। सरकार ने ऐसी परियोजनाओं के लिए अलग से एक कथित 'कार्बन फंड' निर्धारित किया है।

मध्य प्रदेश सरकार की ऐसी ही एक परियोजना है। इसमें करीब 10,000 हेक्टेयर में फैले ऐसे जंगल क्षेत्र का पुनरुद्धार करने की योजना है जो अधिक दोहन या गैर देशी प्रजाति के पेड़-पौधों के अनियंत्रित रूप से बढ़ने के कारण उजड़ गया है। यह कार्बन फंड घरेलू कार्बन बाजार और 'ग्रीन क्रेडिट सिस्टम' के हिसाब से है। सरकार ने निजी क्षेत्र के साथ मिलकर उन भूमि मालिकों को धन देने का वादा किया है जो इन खराब हो चुके क्षेत्रों को खरीदकर उन्हें पुनर्जीवित करना चाहते हैं। अगर कोई किसान किसी ज़मीन पर जलवायु परिवर्तन के असर को और कम कर पाता है तो वे इस 'कार्बन फाइनेंस' से काफी धन निकाल पाएंगे।

छत्तीसगढ़ और उड़ीसा जैसे अन्य राज्यों में भी इसी तरह की परियोजनायें शुरू करने की जरूरत है। क्षेत्र की ऊंचाई पर स्थित जमीन, मध्यम ऊंचाई पर और निचले इलाकों की जमीन का मानचित्रण किए जाने से किसानों को फसल के आवश्यक प्रबंध के लिए मार्गदर्शन देने में मदद मिलेगी। उदाहरण के लिए उड़ीसा सरकार ने एक कार्बन फंड बनाया है। किसान सॉइल ऑर्गेनिक कार्बन (SOC) के लिए अपनी मिट्टी का आसानी से परीक्षण कर सकते हैं और SOC सुधार कार्यक्रम शुरू कर सकते हैं। उसके बाद बिल प्रस्तुत किए जाने पर सरकार किसानों को इसकी भरपाई कर देती है। यह घरेलू कार्बन मार्केट स्थानीय लोगों द्वारा तैयार किए जाने की वजह से यह अंतरराष्ट्रीय नियम कायदों और यहां तक की कार्यप्रणालियों से भी बंधा हुआ नहीं है। स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर कार्यप्रणाली को आकार दिया जा सकता है।

FOLU इंडिया जैसे संस्थान सरकार, सिविल सोसाइटी संगठनों (CSO) और ICAR जैसे शोध संस्थानों के रूप में अलग-अलग हितधारकों को एक साथ लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, ताकि प्रशिक्षण केंद्रों में निवेश के लिए अच्छा वातावरण बनाया जा सके। इसका उद्देश्य अलग-अलग राज्यों की सरकारों को यह समझाना है कि एक ऐसा तंत्र विकसित करना लाभदायक है जो किसानों को पानी और जलवायु संकट से उबरने के लिए विस्तृत मार्गदर्शन दे और प्रत्येक किसान को सही निर्णय लेने में सहायता करे। सरकारें जब एक बार इस 'जलवायु के महत्व' को पहचान लेंगी तो उद्योग जगत को भी इसमें निवेश करने के लिए तैयार करना आसान हो जाएगा।

अवलोकन

1. चावल की खेती को ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन का प्रमुख स्रोत बनने से रोकने का रास्ता है - कार्बन पृथक्करण और ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती के बीच संतुलन बनाने के लिये काम करना।

2. CRRI के अध्ययनों से पता चलता है कि मीथेन उत्सर्जन के नियमन की कोशिश करने के बजाय कार्बन को वायुमंडल से हटाकर उसे मिट्टी में समाहित कर कार्बन पृथक्करण पर ध्यान केंद्रित करना बेहतर है। ऐसा इसलिये है क्योंकि मीथेन और अधिक असरदार ग्रीनहाउस गैस यानी नाइट्रस ऑक्साइड के उत्पादन के बीच एक नाजुक संतुलन है।

3. बारी-बारी से गीली और सूखी की जाने वाली मिट्टी सकारात्मक या ऑक्सीडेटिव रीडॉक्स क्षमता प्राप्त कर लेती है। इससे मीथेन के उत्पादन में कमी आती है, यहां तक कि इसका उत्पादन रुक भी सकता है, मगर इससे नाइट्रस ऑक्साइड के निर्माण को बढ़ावा मिलना जारी रह सकता है क्यों N20 ऑक्सीडेटिव और रिडक्टिव दोनों ही तरह की मिट्टी में उत्पन्न हो सकता है।

4. मिट्टी के गीले होने और सूखने की अलग-अलग स्थितियों में N20 के उत्पादन का भी नियमन करने के लिये सही संतुलन या समझौताकारी संतुलन (ट्रेड-ऑफ) पाने का तरीका यह है कि नाइट्रोजन वाले उर्वरक डालने से पहले मिट्टी की जांच जैसे सही तरीके अपनाए जाएं। इस तरीके को 'खाद का सटीक इस्तेमाल'कहा जाता है, यह खाद की ठीक उतनी ही मात्रा डालने को प्रोत्साहित करता है जितनी उसकी आवश्यकता हो, उस चरण में जब खाद की ज़रूरत हो और उस जगह पर जहां इसका असर सबसे अधिक हो।

5. रासायनिक अवरोध, मीथेनोट्रोफिक जीवाणु और सही पादप शरीर विज्ञान वाली चावल की किस्मों का प्रयोग करके मीथेन के उत्सर्जन को कम किया जा सकता है।

6. फसल सत्र के दौरान चावल के खेत में भरे पानी को एक बार भी निकाल देने से मीथेन के उत्सर्जन में उल्लेखनीय कटौती की जा सकती है। खेत को बारी-बारी से गीला करने और सुखाने के लिये किसी सख्त नियम की जरूरत नहीं है। सिर्फ बीच-बीच में होने वाली बारिश और फिर कुछ अवधि तक वर्षा नहीं होने से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी आ सकती है।

7. निचले क्षेत्रों में बने खेतों या भूमि में पानी भरने की संभावना अधिक होती है और ज़मीन से एक बार भी पानी निकालना हमेशा सम्भव नहीं होता। इन क्षेत्रों में ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने की कोशिश करने के बजाय हमेशा कार्बन हटाने/पृथक्करण पर ध्यान देने की सलाह दी जाती है।

8. मध्यम ऊंचाई वाले और ऊपरी क्षेत्रों में खेतों को बारी-बारी से गीला करने और सुखाने की सम्भावना अधिक होती है। विशेषकर वर्षा सिंचित क्षेत्रों में ऐसा अक्सर होता है। इन क्षेत्रों में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम करने पर ध्यान देना चाहिए। हालांकि, मिट्टी की जांच करने और N20 के अधिक उत्पादन को रोकने के लिए उर्वरक के सही इस्तेमाल का ध्यान रखना चाहिए।

9. ऊंचाई वाले क्षेत्रों में स्थित खेतों में फसल विविधीकरण की पद्धति अपनाने की सलाह दी जाती है। चावल की खेती के बजाय किसी अन्य उपयुक्त फसल का उत्पादन करना ग्रीनहाउस गैसों के उत्पादन और उत्सर्जन को प्रबंधित करने का ज्यादा व्यावहारिक समाधान है।

10. ऊंचाई वाले, मध्यम ऊंचाई वाले और निचले क्षेत्रों में वर्षा आधारित फसल से लेकर सिंचित खेतों सहित सभी मामलों में चावल की सबसे उपयुक्त किस्म का चयन करते समय ध्यान रखने की जरूरत है।

11. सभी मामलों में, खासकर जब खेत को बारी-बारी से गीला करने और सुखाने की अलग-अलग तकनीकें इस्तेमाल की जा रही हों, तब खरपतवार के प्रबंधन पर ध्यान देना जरूरी है।

The
Food and Land Use
Coalition

India Country Platform